ये सपने : ये प्रेत

(५७ से ६३ तक की चुनी हुई ६० कविताएं)

सम्मति और समालोचना
के लिए सादर भेंट
—नवयुग ग्रन्थ कुटीर, बीकानेर

रणजीत



प्रकाशक
नवयुग ग्रन्थ कुटीर
बीकानेर : राजस्थान

प्रथम मुद्रण :
१९६४

मूल्य :
४०० पैसे

आवरण शिल्पी :
राम निवास वर्मा

मुद्रक :
एजूकेशनल प्रेस,
बीकानेर

जाओ।

ओ मेरे शब्दों के मुक्ति-सैनिको, जाओ!

जिन जिन के मन का देश अभी तक है गुलाम

जो एकछत्र सम्राट स्वार्थ के शासन में पिस रहे अभी है सुबह-शाम

घेरे है जिनको रूढ़ि-ग्रस्त चिन्तन की ऊंची दीवारें

जो बीते युग के संस्कारों की सरमायेदारी का शोषण

सहते है बेरोकथाम

उन सब तक नयी रोशनी का पैगाम आज पहुंचाओ

जाकर उनको इस क्रूर दमन की कारा से छुड़वाओ!

जाओ,

ओ मेरे शब्दों के मुक्ति-सैनिको, जाओ।

"वातायन" कार्यालय
५, डागा बिल्डिंग, बीकानेर

मृणाल को
प्यार की पाचवीं वर्ष-गाँठ पर

जूझती प्रतिमाएं

एक विराट् पवित्रता

यह बस्ती बटमारों की !

दृष्टिकोण

वैसे तो जो कुछ मुझे कहना है, मैंने इन कविताओं में कहा ही है, और स्पष्टता पूर्वक भी कहा है, लेकिन फिर भी, क्योंकि यह पुस्तक कोई प्रबंध कविता नहीं, साठ स्वतंत्र कविताओं का एक संकलन है, यह स्वाभाविक ही है कि इसकी अलग अलग कविताओं में मेरे अब तक के अनुभूत सत्य के अलग अलग खण्डों और पक्षों को ही अभिव्यक्ति मिली हो। एक वृत्त की परिधि पर के इन अलग अलग बिंदुओं को मिलाने वाली रेखा का काम मैं इन पंक्तियों से लेने की कोशिश करूंगा।

मैं अपने आपको 'कवि' नहीं मानता, न 'कवि' कहलाना हो पसंद करता हूँ। यह मेरी नम्रता नहीं है। वास्तव में मैं 'कवि' शब्द की प्रचलित धारणाओं के साथ अपने आपको जमा नहीं पाता। जब वे किसी को कवि कहते है तब साधारणतः लोगों का मतलब होता है :

कि वह कोई मंत्रद्रष्टा ऋषि है। मसीहा है। दिव्य शक्तियों से प्रेरित है। कि उसकी वाणी में सरस्वती या कोई और देवी-देवता या स्वयं ईश्वर अभिव्यक्ति पाता है।

या कि वह कंधों पर केश बिखेरे कोई अर्धविक्षिप्त सा प्राणी है जो रास्ते चलते किसी पेड़ की छाया के पास खड़ा होता है कि कविता उसकी आँखों से चुपचाप उमड़ने लगती है। कि वह कोई सौंदर्य-प्रेमी कल्पना-जीवी है; फूल खाता है और ओस पीता है।

या कि वह तुकबाज़ है—आशु कवि। जहाँ किसी ने ललकार दिया : देखें इसी बात पर हो जाय तुम्हारी भी एक कविता!, वहीं तुकें जोड़ कर सुना देता

है। कि उससे चप्पल के टूटने और कुर्सी के गिरने से लेकर महात्मा गांधी के मरने और जवाहरलाल नेहरू के पैदा होने के दिन तक, किसी भी चीज़ पर उसी वक्त कविता लिखाई जा सकती है।

लेकिन मेरे साथ मुश्किल यह है कि मैं न तो अपने आपको मसीहा मानने के मानसिक रोग से पीड़ित हूं, न फूल खाकर और ओस पीकर ज़िन्दा रह सकता हूं और न होली-दिवाली, पन्द्रह अगस्त और छब्बीस जनवरी पर साप्ताहिक पत्रों के सम्पादकों को ही खुश कर सकता हूं। इसीलिए कहता हूं कि मैं कवि नहीं हूं, मैं तो फ़क़त एक कविता-लेखक हूं। मैं कविता करता नहीं, लिखता हूं। वह अपने आप बहती नहीं, मैं सोच समझ कर बहाता हूं। कविता मेरे सामने अवचेतन का क्रन्दन नहीं, अहम् का विस्फोट नहीं, अपने या किसी के मनोरञ्जन या रस-प्राप्ति मात्र की चीज़ नहीं, 'अपनी सामाजिक अनुपयोगिता के विरुद्ध अपने आपको प्रमाणित करने का प्रयत्न' नहीं, एक सजग सामाजिक कर्तव्य है, अपने आसपास के संसार को, और उसके साथ ही साथ एव अपने आपको, अपने सपनों के अनुकूल ढालने का प्रयत्न है।

जीवन और जगत को मैं विकास की एक निरंतर प्रक्रिया के रूप में देखता हूं। यह एक प्राकृतिक प्रक्रिया है पर मनुष्य इसके नियमों को समझ कर इसकी गति को प्रभावित कर सकता है। जीवन और जगत के नियमों को समझ कर उन्हें अनुशासित करने की इन्हीं मानवीय कोशिशों के दौरान में मानवीय संस्कृति जन्म लेती है—विज्ञान और विभिन्न कलाएं, कविता भी जिनमें से एक है, पनपती और विकसित होती हैं। और इसी काम में सहायक होना ही उनकी सार्थकता भी है।

साहित्यकार की और वैज्ञानिक की भी मानवीय विकास की प्रक्रिया में सहायक होने की भूमिका दो स्तरों की हो सकती है: एक सामयिक और

दूसरी अपेक्षा कृत अधिक स्थायी। वर्तमान स्थिति से उदाहरण लिया जाय। विश्व में पूंजीवादी और मानव-वादी शक्तियों का संघर्ष घमासान है। एक वैज्ञानिक मानववादी ताकतों के लिए युद्ध-सामग्री बनाकर भी सामाजिक विकास की प्रक्रिया में एक तरह से सहायक ही होता है। इसी प्रकार का योग उस साहित्यकार का होगा जो सामयिक राजनीति पर जोश-खरोश के साथ लिख कर प्रतिक्रियावादी ताकतों पर प्रहार करता है। लेकिन इनकी अपेक्षा स्पुतनिक और योस्तोव बनाने वाले वैज्ञानिक और मानव आत्मा का परिष्कार कर उसे धर्मों-देशों और वर्गों से ऊपर उठा कर सम्पूर्ण मानवता के प्रति जिम्मेदार बनाने की कोशिश करने वाले साहित्यकार का योग अधिक स्थायी और अधिक महत्व का माना जायेगा। लेकिन स्थायित्व सामयिकता का विरोधी नहीं है कि उसके तिरस्कार से ही प्राप्त किया जा सके। बल्कि सच तो यह है कि ये दोनों भूमिकाएं एक दूसरे से अलग-अलग रख कर सफलता पूर्वक अदा की ही नहीं जा सकतीं। वही साहित्य स्थायी भी हो सकता है जिसने पहले अपनी युगीन आवश्यकताओं को पूरा कर लिया हो, बशर्ते कि पहला कर्तव्य निभाते हुए उसका अंप्रोच एकदम संकीर्ण न हो गया हो। एक जिम्मेदार साहित्यकार को ये दोनों विरोधी से लगने वाले कर्तव्य एक साथ निभाने होते हैं। साहित्य की शाश्वतता के नाम पर अगर उसने वर्तमान से आंखें मूंद लीं तो वह जीवन की शक्तियों से छिटक कर भ्रमों के देश में भटकने लगेगा। और अगर उसने तात्कालिक कर्तव्य के लिए अपने अधिक महत्व-पूर्ण कर्तव्य को भुठला दिया तो यह उसकी अधिक गंभीर क्षमताओं का अनुपयोग होगा। सामयिक राज-नीति से तटस्थ वह रह नहीं सकता, जिसे प्रचार कहा जाता है, उससे विरत वह हो नहीं सकता पर साथ ही इनके कारण वह अपने दूसरे अधिक महत्वपूर्ण दायित्व को भी भूल नहीं सकता। एक ओर उसे वर्ग-संघर्ष को

बढ़ावा देना होता है तो दूसरी ओर उस भविष्य के सपने पर भी नज़र रखनी पड़ती है, जब मनुष्य और मनुष्य एक दूसरे के दुश्मन नहीं होंगे। यह एक द्वन्द्वात्मक स्थिति है कि पहला काम उसे दूसरे उद्देश्य से प्रेरित होकर ही करना पड़ता है।

इस संकलन की कविताएं तीन खंडों में छापी जा रही हैं जिनमें क्रमशः संघर्ष, प्यार और व्यंग संबंधी रचनाएं संकलित हैं।

एक प्रगतिशील साहित्यकार की जिन्दगी एक निरन्तर संघर्ष होती है। उसे न केवल अपने बाहर के, अपने समाज के सामन्तवाद और पूंजीवाद से लोहा लेना होता है, बल्कि साथ ही अपने अन्दर के सामन्ती और पूंजीवादी संस्कारों और धारणाओं से भी लगातार लड़ते रहना पड़ता है। जीवन को थोड़ी यान्त्रिक दृष्टि से देखने वाले लोग साहित्यकार के केवल बाहरी—सामाजिक-संघर्ष को ही, और इसलिए उसी साहित्य को जो इस संघर्ष में सीधा काम आता है, सर्वाधिक महत्व देना चाहते हैं। किंतु जहां तक स्वयं साहित्यकार का संबंध है, उसके आन्तरिक संघर्ष का महत्व भी कम नहीं है। क्योंकि उसमें जीतते रहने के बाद ही बाहरी संघर्ष में वह अपनी भूमिका सफलता पूर्वक अदा कर सकता है। यह अलग बात है कि बाहरी संघर्ष में भाग लेना मात्र कई बार उसको भीतरी संघर्षों में विजय देता रहता है। दोनों संघर्ष एक दूसरे के पूरक और एक दूसरे पर आधारित हैं। मैंने इस सर्वांगीण संघर्ष के दोनों पक्षों को स्वीकारने की कोशिश की है। इसका प्रमाण एक तरफ मेरी 'तुम्हारे ही लिए तो', 'मर गया ईश्वर' और 'मेरी कलमःतुम्हारी किस्मत' जैसी कविताएं हैं, तो दूसरी ओर 'बिकले आदम, बनती छायाएं', 'ये सपने : ये प्रेत' तथा 'फ़ाउस्ट के कन्फ़ैशन' जैसी कविताएं।

पूंजीवादी समाज में रहते हुए अपने आपको मानववादी बनाए रखना एक कष्ट-साध्य साधना है,

जो हर जिम्मेदार प्रगतिशील साहित्यकार को करनी पड़ती है। विचारों में पूरा मानववादी होकर भी वह अपने सामाजिक जीवन को अपने आदर्शों के अनुकूल ढाल नहीं सकता [क्योंकि मानववाद, मेरा मतलब वैज्ञानिक मानववाद से ही है, एक सामाजिक दर्शन है और कोई व्यक्ति उसका पूरा सामाजिक व्यवहार तब तक नहीं कर सकता, जब तक कि पूरा समाज ऐसा करने के लिए तैयार नहीं हो जाता या बाध्य नहीं कर दिया जाता। जब तक समाज व्यवस्था में परिवर्तन नहीं आ जाता तब तक व्यक्तिगत रूप से ऐसा करने की कोशिश निष्परिणाम गांधीवादी मूर्खता ही होगी।] और जीवन में पूंजीवाद व्यवहार को स्वीकार करके भी वह अपने मन को मानववादी आदर्शों के प्रति निष्ठावान बनाये रखना चाहता है। यह एक तीखे तनाव की स्थिति है और इसमें बने रहने के लिए उसे लगातार अपने परिवेश से और अपने आपसे लड़ते रहना पड़ता है।

प्यार को मैं इन्सानियत का पहला तकाज़ा मानता हूँ, मानवीयता की पहली शर्त ! प्यार अस्तित्व का एक ऊंचा स्तर है, वह स्तर जहां हम किसी मनुष्य को, बिना उसे नापे-तोले, बिना यह सोचे-विचारे कि वह हमें कितना लाभ या कितनी हानि पहुंचा सकता है, महज़ एक मनुष्य होने के नाते ही मान्यता देते हैं। यह वह स्थिति है जहां हमारे सामान्य जीवन की व्यावसायिक कसौटियां पीछे रह जाती है और मनुष्य तथा उसकी मनुष्यता अपने आप में महत्वपूर्ण हो उठती है। मेरी दृष्टि में प्यार भी समानता की तरह ही एक ऐसा आदर्श है जो व्यक्तिगत हानि-लाभ के संदर्भ में रखकर प्राप्त नहीं किया जा सकता। पर हमारी वर्तमान सामाजिक व्यवस्था — जिसकी अभिशप्त छायाएं हमारी आत्माओं तक को ग्रसे हुए हैं—ऐसी किसी भी स्थिति की मूलतः शत्रु है, जिसकी प्राप्ति की पहली शर्त ही सौदेबाजी की सीमाओं से ऊपर उठना हो। यही

कारण है कि इस समाज-ढाचे में हम प्यार के नाम पर ऐसे कुछ क्षण ही पाते हैं जब हमने इस व्यवस्था के सारे प्रत्यक्ष और परोक्ष बंधनों को झुठला दिया था। इसी सत्य के अलग-अलग पक्षों की अभिव्यक्ति मेरी 'बस में पास बैठी एक बच्ची से', 'एक विराट पवित्रता और दो क्षुद्र आत्माएं' तथा 'प्यार : चार अस्वीकृतियां' जैसी कविताओं में हुई है।

व्यंग मेरा प्रिय माध्यम रहा है और मैंने अपने अन्दर की और अपने परिवेश की क्षुद्रताओं और पाखंडों को इसका विषय बनाया है।

कविता में अनुभूति का स्थान सर्वोपरि है, इस विषय में दो रायें नहीं होनी चाहिएं, लेकिन अनुभूति का मतलब हमेशा प्रत्यक्ष अनुभूति से ही नहीं होता। कई बार अनुभूति किसी वास्तविक घटना या स्थिति के प्रत्यक्षीकरण की जगह किसी काल्पनिक घटना या स्थिति के प्रत्यक्षीकरण की भी हो सकती है। फिर किसी दूसरे की अनुभूत स्थिति में संक्रमण द्वारा भी उसकी अनुभूति संभव है। अपनी कविताओं की रचना प्रक्रिया के बारे में सोचता हूं तो लगता है कि यद्यपि ऐसी कविताओं की संख्या कम नहीं है जो मेरे जीवन की प्रत्यक्ष अनुभूतियों की अभिव्यक्तियां हैं तथापि कई कविताओं में किसी काल्पनिक अनुभूति (जैसे— 'कितनी जल्दी') या किसी दूसरे की अनुभूति में संक्रमण और उसके बाद अभिव्यक्ति, रचना का यह क्रम भी मिलता है। यह बात जरूर है कि इस प्रक्रिया में अपने स्मृति भण्डार और अपने पिछले अनुभव-संस्कारों का भी पर्याप्त उपयोग हो जाता है। मेरा ख्याल है कि इससे अनुभूति की ईमानदारी और कविता के कवितापन में कोई कमी नहीं आती, बशर्ते कि काल्पनिक या पराई अनुभूति का साक्षात्कार भी उसी उत्कटता से किया जाय, जिससे वास्तविक अनुभूति का किया जाता है। कई बार ऐसा भी होता है कि किसी की रचना का रसास्वादन करते हुए यह लगता है कि उसकी

अनुभूति अधूरी ही रह गई है, या भटक गई है अर्थात अपने संगत परिणाम तक नही पहुंच पाई है या कि उसकी अभिव्यक्ति अपूर्ण है और तब एक अदम्य इच्छा होती है कि उसे उसकी संगत परिणिति तक पहुंचाया जाय या पूर्ण किया जाय। मेरी कुछ कविताएं इस तरह की 'साहित्यिक प्रेरणाओं' का परिणाम भी है। जैसे भवानी भाई की 'गीत फ़रोश' मुझे बहुत पसन्द आयी। लेकिन लगा कि इतनी अच्छी कविता सिर्फ़ गीतफ़रोशों पर व्यंग बनकर ही रह गयी है। उसका जो मूल उद्देश्य होना चाहिए था अर्थात् इस समाज व्यवस्था पर व्यंग करना, जहां लोग गीत बेचने पर मजबूर होते हैं, वह पूरा नहीं हो पाया है। और इसका परिणाम थी— 'मैं प्यार बेचती हूं'। यही बात मेरी एक दूसरी कविता "एक विराट् पवित्रता और दो क्षुद्र आत्माएं" के साथ भी सही है, जिसकी प्रेरणा मुझे धर्मवीर भारती की एक कविता 'यह आत्मा की खूंख्वार प्यास' से मिली थी। भारती की यह कविता पढ़ते हुए मुझे यह लगा था कि एक सत्य, जिसका उसने अनुभव किया है, और अपनी विशिष्ट परिस्थितियों में मैंने भी उसे नज़दीक से देखा है, भारती की टोन पकड़ में नहीं आ रहा है। पूरी कविता पढ़ जाने के बाद सिर्फ़ यही बात कि औरत बहुत ओछे मन की होती है, मन पर छाप छोड़ती है। और मुझे लगा कि अगर मैं कोशिश करूं तो शायद उस सत्य को ज्यादा सच्ची तरह से—ज्यादा अच्छी तरह से भले न भी हो सके— अभिव्यक्त कर सकता हूं। और इसी का परिणाम थी मेरी कविता, 'एक विराट् पवित्रता और दो क्षुद्र आत्माएं'।

इसी तरह कई कविताओं की प्रेरणा किसी दूसरे की किसी दूसरे ही प्रसंग और किसी दूसरी ही दृष्टि से लिखी किसी कविता का शिल्प दे जाता है। यानी या तो जब हम उसके शिल्प की पूर्णता को भोगते हैं तब लगता है कि यह शिल्प यदि किसी और भी बड़े सत्य

को धारण कर पाता तो अधिक सार्थक हो जाता और इस लिए अपने किसी 'बड़े' सत्य को उस या उस जैसे पुष्ट शिल्प में अभिव्यक्ति देने का लोभ हम संवरण नहीं कर पाते; और या अपनी किसी अनुभूति को उपयुक्त अभिव्यक्ति देने की कोशिश में जब हम होते हैं उस समय अचानक किसी पढ़ी हुई कविता का शिल्प हमारे सामने आ खड़ा होता है और झोली फैला कर अनुभूति का दान मांगने लगता है और हम यह जान कर भी कि यह पराया है, उसके सौष्ठव के कारण अपनी अनुभूति उसकी झोली में डाल देते हैं। इस संकलन की तीन कविताएं—'मर गया ईश्वर', 'कुत्तों की आज़ादी' और 'घोड़ों का अर्थशास्त्र' इसी तरह लिखी गयी हैं। पहली के शिल्प की प्रेरणा मुझे भारती की कविता 'कविता की मौत' और शेष दोनों की अज्ञेय की 'रेंक रे गधे रेंक' कविता के शिल्प से प्राप्त हुई थी।

मैं कविता के सतीत्व में विश्वास नहीं करता—न ऊपर वाले अर्थ में और न इस अर्थ में कि एक बार जो लिख दिया वह पत्थर की लकीर। मैं अपनी कविताओं को लगातार सुधारता रहता हूँ। जब-जब उन्हें वापस पढ़ता हूं और जब-जब मुझे लगता है कि यहां यह बात स्पष्ट नहीं हुई है या यहां यह शब्द वे सब अर्थ और एसोसिएशन्स नहीं दे पाता जो उसे देने चाहिए, तब-तब उन्हें बदलता रहता हूं। कविता एक कला है और कला केवल अनुभूति ही नहीं होती, अभिव्यक्ति भी होती है। अभिव्यक्ति अभ्यास की मोहताज है। सफल अभिव्यक्ति की कोशिश न केवल उसे परिष्कृत करती है, बल्कि कई बार मूल अनुभूति को भी परिष्कार दे जाती है।

इस संकलन की कुछ कविताएं छन्दबद्ध और तुकान्त, कुछ छन्दहीन पर तुकान्त, अधिकांश छन्दमुक्त अतुकान्त लेकिन लय-युक्त और कई छन्द, तुक, लय सबसे मुक्त सीधीसादी गद्य शैली में लिखी हुई हैं। कविता शब्दों और उनकी संयोजना की, व्यवस्था की

कता है। शब्दों के चयन और वाक्य में उनकी आपेक्षिक स्थिति के माध्यम से ही वह अपनी 'बात कहती' है। शब्दों की एक व्यवस्था जो प्रभाव डाल सकती है, जिन संवेगों को जगा सकती है, हो सकता है उन्हीं शब्दों की दूसरी व्यवस्था उनको न जगा सके। कविता को कविता बनाने वाली चीज़ पद्य या गद्य शैली नहीं, उसका अभिव्यक्ति का विशेष ढंग है। और उसका रागात्मक ऍप्रोच है।

कविता में छन्द, लय और तुक की दो सार्थकताएं हैं। एक तो ये कविता को 'स्थायित्व' देते हैं, अर्थात उसकी स्मरणीयता बढ़ाते हैं। और दूसरे ये उस स्थिति के उपकरण बनते हैं जिसे कॉडवेल 'शरीर-शास्त्रीय अन्तर्मुखता' कहा है और जिसके बिना श्रोताओं को कविता के रङ्ग में रँग पाना असंभव है। अर्थात छंद, लय और तुक के कारण कविता का श्रोता तन्मय होकर उसे सुनने लगता है, उसके क्षेत्र से बाहर नहीं भटक पाता, जिसे समां बांध देना कहा जाता है, ऐसी स्थिति आ जाती है और इस प्रकार की शरीर-शास्त्रीय अन्तर्मुखता के बाद ही कविता अपने श्रोताओं पर अपना वांछित प्रभाव जमाना शुरू करती है। छंद, लय और तुक के ये दोनों उपयोग आरम्भिक काल से चले आ रहे हैं। आज भी कविता का एक बड़ा हिस्सा इन उपयोगों को सार्थक करता है। लेकिन अब कविता धीरे-धीरे एक पठ्यकला के रूप में भी विकसित होती जा रही है। प्रकाशित रूप में उसका 'स्थायित्व' उसकी स्मरणीयता का कम, उसके कागज़ की क्वालिटी का अधिक मोहताज़ होता जा रहा है। इसी प्रकार शरीर-शास्त्रीय अन्तर्मुखता के पुराने उपकरणों का स्थान भी आकर्षक छपाई, विशिष्ट शीर्षक और उसके लेखक के प्रति पाठक की पहले से बनी हुई धारणा, उसकी प्रतिष्ठा आदि तत्व लेते जा रहे हैं।

हां, 'लय'—अपने लाक्षणिक अर्थों में—अवश्य हर युग की कविता में, और कविता ही क्यों, सभी

कलाओं में, विद्यमान रहती आई है और रहती रहेगी। यह एक प्रकार की सिमेट्री, एक प्रकार की क्रमिकता और प्रमावान्विति है, जिसके कारण कोई कविता अतुकान्त होकर भी बेतुकी नहीं बन जाती, लयहीन होकर भी विशृंखल नहीं हो जाती।

कहने का मतलब यह है कि छंद, लय और तुक कविता के शिल्प के अवयव हैं और इनके निर्वाह से यदि वस्तु पर कोई आघात नहीं पहुँचता तो यह प्रशंसनीय है, पर यदि ऐसा नहीं हो सकता हो तो इनका अभाव शिल्प के अन्य अवयवों से पूरा किया जा सकता है, यही मेरी नीति रही है। न छंद का विशेष आग्रह है, न छंद-हीनता का। आग्रह है तो सिर्फ उस 'बात' का जिसे मैं कहना चाहता हूं। और उसके लिए अब आप मेरी कविताओं की ओर बढ़ सकते हैं।

जूझती प्रतिमाएं

जूझती प्रतिमा

नहीं रहा मैं अपने पथ पर आज अकेला
क्योंकि तुम्हारी भी आंखों में
कल के विकल स्वप्न जागे हैं
तुमने भी निर्मम होकर, अतीत के
तोड़े सभी मोह-तागे हैं
स्मृतियों में जीना तुमने भी छोड़ दिया है
और धधकते वर्तमान का
तुमने भी विष-पान किया है
ताकि भविष्यत् के अपने सपनों को
तुम भी सुधा-सिक्त कर पाओ
समझ गये हो तुम भी, इस मानव समाज के

अनगढ़ शिला खंड के भीतर
मूर्तिमान होने को जूझ रही जो
प्रतिमा—
सब पाषाणी बन्ध काट कर
उसको बाहर लाना होगा
मिट्टी की परतों में दबी हुई छटपटा रही जो
एक अजन्मी दुनियां की उस नयी पौध को
हृदय-रक्त से सींच हमें उमगाना होगा।

सहमी सी नज़रों से पर इस तरह न देखो
सपनों के रखवाले केवल हम्हीं नहीं हैं
हम पर ही उन्माद नहीं छाया भविष्य का
जगती के सुख-दुख के मस्ले
सिर्फ हमारे ही दिल पर के भार नहीं हैं
हम-मंज़िल हैं बहुत हमारे
जो नयनों में सपन
दिलों में तपन
सिरों पर कफ़न बांध चलते हैं
आओ हम भी जल्दी जल्दी पैर बढ़ाएँ
अँधियारे के दैत्यों से जो लड़े जा रहे
नवयुग का ध्वज लिए हाथ में बढ़े जा रहे
रक्त बीज बो बो कर जो आगामी कल को
लाल किरन से मढ़े जा रहे
उन लोक-हरावल में चलने वालों से कदम मिलाएं
ताकि हमारी सबकी आँखों में जो छाये
वे संघर्ष-रत स्वप्न कभी सच्चे बन पाएं।

जयपुर,
सितम्बर '५७

तुम्हारे ही लिए तो

मैं तुम्हारे ही लिए तो लिख रहा हूं !

तुम जो नयनों में लिए हो नये युग का एक सपना
तुम जो गिट्टी फोड़कर कठिनाइयों को
खुद बनाते चल रहे हो मार्ग अपना
तुम जो मिट्टी गोड़कर इस आज की, आगत की मूरत गढ़ रहे हो
तुम जो अपने साथ ले इतिहास-रथ को बढ़ रहे हो
मैं तुम्हारे ही लिए तो लिख रहा हूं !

तुम जो हिम्मत हार थक कर रुक रहे हो
तुम जो जुल्मोसितम-आगे झुक रहे हो
तुम जो काली ताकतों से डर रहे, घबरा रहे हो
तुम जो अब संघर्ष-पथ को समझकर दुर्गम
सुलह की शाह-राह पर आ रहे हो
मैं तुम्हारे ही लिए तो लिख रहा हूं !

तुम कि जिनके हृदय में ज्वाला नहीं है
तुम जिन्होंने पलक पर अपनी
अनागत का सपन पाला नहीं है
तुम जो सहते जा रहे हो मुफ़लिसी की यह ज़लालत
तुम जो जिन्दा मौत में हो पर नहीं करते बगावत
मैं तुम्हारे ही लिए तो लिख रहा हूं !

हर चलने वाले की जीत गीत मेरे गा पाएं
हर पथ पर थक रुकने वाले के कदमों को सहला पाएं
हर उसको जिसने चलने का मोल नहीं समझा
ये बोल मेरे चलने का राज़ सिखा पाएं—
बस इसीलिए तो क़लम को रेती बनाकर
मैं तुम्हारे भाग्य की पत्थर लकीरें घिस रहा हूँ
मैं तुम्हारे ही लिए तो लिख रहा हूँ!

जयपुर,
जनवरी '५८

नयी मंज़िल : नयी राहें

'बोधिवृक्ष' की छाया में हम भी बैठे हैं
हमने भी सोचा है, मनन किया है
फिर पाया आलोक ज्ञान का
अपने दीप स्वयं बन कर के
'सुगति-मार्ग' हमने भी ढूँढा
जगती के सुख-दुख के कारण
और निवारण
हम भी समझे
बहुजन-हित के लिए 'संघ' की शरण ग्रहण की
सुना रहे हैं जन जन को संदेश सत्य का
घूम घूम कर

'पशु-बलि' का विरोध हम भी करते हैं
फिर भी यदि अन्वेषण के परिणाम हमारे
गौतम से कुछ विलग रहे हैं
तो वह बस इसलिए कि गौतम ने केवल
एक बार जीवन देखा था
—आंख खोल कर—
जरा-मृत्यु के एक रूप में
इसीलिये वे
जन्म-मरण के चक्कर को ही
दुख का मूल समझ बैठे थे
किन्तु हमारे आगे
अच्छी तरह जिन्दगी को जी सकने के सच्चे मसले हैं
लोगों की रोटी-रोज़ी की
उलझी हुई समस्याएं हैं।

हमने भी वश किया 'इंगला औ' पिंगला' को
प्राणों का संयम हमने भी सीखा
—सांस रोक कर हम भी करते रहे प्रतीक्षा—
युग युग से सोयी जीवन की 'कुण्डलिनी' को
साध, जगाकर किया उर्ध्वमुख
लेकिन समझ गये जल्दी ही :
अपना यह नाड़ी मंडल तो बहुत सूक्ष्म है
—बहुत तुच्छ है—
इसीलिये तो
अपने से बाहर के जग की नाड़ी आज टटोल रहे हैं
आत्म-दमन तो युग-युग से करते आये हैं

—भीतर के रिपुओं से लड़ लड़ कर बस शक्ति गँवाई—
किन्तु बाहरी रिपुओं को भी
अधिक प्रबल जो—
ताक़त आज भुजाओं पर हम तौल रहे हैं
डोल रहे हैं
मेहनत का तप
और स्वेद की भस्म रचा कर
नगर-नगर में, गांव-गांव में
किन्तु ब्रह्म का नहीं
साम्य का 'अलख' जगाने
क्योंकि आज हर साधक के सम्मुख
'शून्य-गगन' से धरा-सत्य पर आने के अतिरिक्त
नहीं पथ कोई
टूटी बिखरी मानवता का 'योग' छोड़कर
कोई सम्यक् योग नहीं है।

हम भी झूम झूम कर गाते
मिलों-कारखानों-खेतों में,
गीत प्रीत के
'कंस'-ध्वंस के
'कान्ह'-जीत के
'सखा-भाव की भक्ति' हमारी भी है
किन्तु हमारा कान्ह सूर के सखा श्याम से अगर भिन्न है
तो वह बस इसलिए कि सूर ने
केवल एक श्याम को पहिचाना था
और हमारी आंखों आगे
लाख-करोड़ों कान्ह खड़े हैं!

जयपुर,
फरवरी '५८

मर गया ईश्वर !

"किस अभागे को मरे इस धूप में दफ़ना रहे हो
और इसकी मौत पर क्यों खुशी से चिल्ला रहे हो
कौन है ऐसा बिचारा, दो बता ?"

"मर गया ईश्वर, नहीं तुमको पता ?"

"मर गया ईश्वर ?
ईश्वर कि जिसने स्वयं अपने हाथ से धरती बसायी
चांद औ' सूरज बनाये
पर्वत के, झीलों के, सागर औ' द्वीपों के नक्श उभारे
ऊँचे ऊँचे गिरि-शिखरों पर बर्फ़ जमायी
औ' उनकी लम्बी छाँहों में
नदियों के डोरों से सी कर
वन, उपवन, ऊसर, परतों को भूरी-हरी थिगलियों वाले
कंधे से मैदान बिछाये—

ईश्वर कि जिसने आदमी पैदा किया
क्या वही अब मर गया ?"

"हां मर गया ईश्वर कि उसके त्रास सारे मर गये
सृष्टि के आरम्भ से चलते हुए
आदमी के ख़ून पर पलते हुए
अन्याय के इतिहास सारे मर गये !

"मर गया ईश्वर कि उसके धर्म सारे मर गये
स्वर्ग-नरक के, पाप-पुण्य के
पुनर्जन्म औ' कर्मवाद के मर्म सारे मर गये !

"मर गया ईश्वर, विषमता का सहायक मर गया
आदमी के हाथ में हो आदमी का भाग्य देकर
विश्व का दैवी विधायक मर गया
मर गया ईश्वर !"

"यह हुआ कैसे मगर ?"

"साइंस की किरणों ने मारा, मर गया
वहम का पर्दा उघाड़ा, मर गया
आदमी ने जब तलक पूजा अँधेरे में उसे जिन्दा रहा
रोशनी के सामने ज्यों ही पुकारा, मर गया !"

"ख़ैर, अच्छा था बिचारा, मर गया !"

जयपुर,
मार्च '४८

बिकते आदम, बनती छायाएं और मेरे गीत

कभी कभी डर सा लगता है
इस पीले प्रेतों की बस्ती में रहते रहते ही
प्रेत न मैं खुद ही हो जाऊं
उन सब ज़िन्दा इन्सानों की तरह जिन्होंने
पहले स्वर में
मानवता की विजय-पताका फहराई थी
किन्तु जिन्हें फुसला फुसला कर
चाँदी के इस चक्रव्यूह में लाकर
इन प्रेतों ने
आज प्रेत ही बना लिया है !
यों तो अपने पर मुझको विश्वास बहुत है, लेकिन
आसपास की स्थितियों के प्रभाव को भी
झुठलाना मुश्किल है
ठीक है—
इन्सानियत के प्यार की यह वृत्ति कुछ हल्की नहीं है,
कभी कभी पर
नोटों के कागज़ भी कहीं अधिक भारी हो जाया करते हैं
मन के गहरे विश्वासों को

तन की भूख हिला देती है
रोटी की छोटी सी कीमत भी कभी कभी
इन बड़े बड़े आदर्शों को रेहन रख कर
मिट्टी में गर्व मिला देती है !
यदि ऐसा हो कभी :
कि इस ले पूँजी का अजगर मुझको भी
प्रेतों के हाथों में भी बिक जाऊं
मानवीय क्षमता, समता के गीत छोड़ कर
प्रेतों का ही यशोगान करने लग जाऊं
तो ओ छलना से बचे हुए जिन्दा इन्सानो !
मुझको मेरे वे गीत सुनाना
जो मैंने कल प्रेतों को इन्सान बनाने को लिक्खे थे
प्रेतों में सोया ईमान जगाने को लिक्खे थे
एक ओर बिकते आदम पर
एक ओर बनती छाया पर
उन गीतों की शक्ति तोलना
हो सकता है
उनकी गर्म सांस फिर मेरे
मुर्दा मन में प्राण फूँक दे
किरणों की अंगुलियाँ उनकी
चाँदी की पर्तों में दबे पड़े
इन्सानी बीजों को अंकुर दे जायें
फिर से शायद
भटका साथी एक तुम्हारा राह पकड़ ले
और तुम्हारा परचम लेकर
लड़ने को प्रस्तुत हो जाये—
कभी कभी डर सा लगता है !

जयपुर,
मई '५८

जीत अधूरी है !

अभी जकड़ रक्खा हाथों को
थैलीशाही कानूनों ने
अभी घेर रक्खा इन्सां को
इन हैवानी नाखूनों ने
फसे हुए हैं अभी सूर्य के रथ के पहिये

अन्धकार का दलदल अभी नहीं सूखा है
वह आदिम अभिशाप अभी लागू है :
हव्वा की बेटी जन जन कर कोस रही है
बहा बहा कर अभी पसीना
आदम का बेटा भूखा है !
यह केवल झुटपुटा है, साथी
अभी सवेरा दूर है—
झलक मात्र है उसकी यह तो
क्षितिज-रेख के नीचे अब तक थमा हुआ जो नूर है !
यह पहला पड़ाव है केवल
चहल पहल में इसको बहल न जाना
श्रम के बेटो और बेटियो !
छले न जाना शासन की छाया के छल से
सत्ता के इस स्वर्ण-जाल में अटक न जाना !
समझौते की नाजुक राहों पर चलते चलते
कहीं लक्ष्य से अपने भटक न जाना !
सरमाये के नियमों में बंध कर रहने की
वर्तमान मजबूरी है जो
कहीं उसे स्वीकार न लेना
आधी मुक्त हवा में साँसें लेकर
अपने संचित मुक्ति-बोध को मार न लेना !
यह केवल पहला हमला है
सावधान हो !
छोटी छोटी जीतों की खुशियों में खो मत जाना
अभी लड़ाई आजादी की, मेरे मीत, अधूरी है
मानवता को बाँट खड़ी जब तक दीवारें टूट न जायें
केरल की यह जीत अधूरी है !

भीलवाड़ा,
जून '५८

मेरी क़लम : तुम्हारी क़िस्मत

घोंटो,
ओ गूँगों के राजा, घोंटो !
गला मेरे बाग़ी गीतों का
ताकि तुम्हारे रिकार्डों में भरे हुए वे गीत पुराने
मैं फिर फिर दुहरा दूँ केवल
और तुम्हारे चुप-समाज में
शब्दों वाला ज़हर न फैले !

तोड़ो,
ओ लँगड़ों के स्वामी, तोड़ो !
मेरी नफ़रत भरी क़लम के पाँव तोड़ दो
ताकि तुम्हारी बनी हुई बैसाखियों के ही सहारे
वह लँगड़ाए
और तुम्हारे जड़-समाज में
गतियों के भूकम्प नहीं आ पायें !

ठोको,
ओ अन्धों के मालिक, ठोको !
मेरी नज़रों की बाँहों में कील ठोक दो
ताकि तुम्हारी काली आँखों से देखूँ मैं
और कहूँ निश्चय से : आगत अँधियाला है

और तुम्हारे धुप-समाज में
उजियाले की आग नहीं लग पाये !

फोड़ो,
ओ सिर-हीनों के प्रभु, फोड़ो !
मेरे चिन्तन का सिर फोड़ो
ताकि तुम्हारा रेडीमेड मस्तिष्क पहिन लूं
उससे सोचूं और करूं घोषित : यह मेरा मत है
और तुम्हारे धड़-समाज में
स्वयं सोच सकने का रोग न फैले !

संभलो,
ओ गूंगों के राजा,
ओ लंगड़ों के स्वामी,
ओ अन्धों के मालिक,
ओ सिर-हीनों के प्रभु, संभलो !
मेरे बागी गीत सुनो फुफकार रहे हैं
मेरी कलम तुम्हारी किस्मत का
निर्णय करने तैयार खड़ी है
मेरी क्रान्ति-दर्शिनी नजरें
भावी अरुण विहान देख कर
लगा रही हैं आग तुम्हारे वर्तमान में
मेरा विप्लवकारी चिन्तन
संक्रामक रोगों के घातक
विषकीटाणु बिखेर रहा है, संभलो !!

जयपुर,
अगस्त '५८

तीन रुबाइयाँ

[१]

ज़ुल्म जब सहे नहीं जाते तब क़लम उठाता हूँ
हर मज़लूम हृदय में सोया द्रोह जगाता हूँ
मेरी कविता वह मशाल है जिससे मैं समाज के—
इस सड़ियल ढाँचे में आग लगाता हूँ।

[२]

मैं बाग़ी हूँ और बग़ावत मेरा काम है
हर लमहा हमले का मौक़ा क़दम-क़दम पर लाम है
जब तक ख़ून की सौदेबाज़ी बंद नहीं हो जायेगी
मेरा हर अक्षर शोलों से भरा हुआ पैग़ाम है!

[३]

प्यार और बग़ावत के मैं गीत लिखता हूँ
हैवानियत की हार और इन्सानियत की जीत लिखता हूँ
लड़ाई जारी रहेगी जबतक 'इन्सान' इन्सान नहीं बनता
इसलिये अपना नाम अभी 'रणजीत' लिखता हूँ।

जयपुर,
सितंबर '५९

बस में, पास बैठी एक बच्ची से

आओ !
और निकट आ जाओ मेरे
सट कर बैठो
नहीं, यों नहीं !
उठो—गोद में तुम्हें बिठा लूं
एक भटकते आदम के अभिशप्त पुत्र को
कुछ क्षण की राहत मिल पाए
बहुत दिनों के प्यासे तन को
मानव-तन का
सौंधा, नरम परस मिल जाए।
हां—इसी तरह बस के धक्कों से
अपने इस छोटे से सिर को
मेरे सीने पर आ आ कर टकराने दो
अपने इस मासूम जिस्म को यों ही
मेरी इस बेचैन बांह से

आधा छुआ हुआ रहने दो
कितने दिन के बाद आज फिर
चलती फिरती लाशों की ठण्डक से ऊबे मेरे तन को
इन्सानी गरमाइश का अहसास मिला है
मानव-मानव के उन जैविक संबंधों को तृप्ति मिली है
जिनके वशीभूत होकर ही
अब भी कभी कभी मानव को
कोई भी मानव प्यारा लगता है !

लो—
फ़व्वारा आ गया
उतर जाओ धीरे से
ठहरो !
बस को रुक लेने दो
नहीं ! ओह, इसकी थी कौन जरूरत ?
उतरो !
बस चलने वाली है जल्दी उतरो !
विदा ! अलविदा !!
अब मैं फिर से जूझ सकूंगा
थैलीशाही अर्थशास्त्र के चक्र-व्यूह से
जिसमें फंस कर हमने अपनी
हस्ती को ही खो डाला है
उसके उलझे ताने बाने को काटूंगा
जिसके अलग अलग घेरों में घिर कर
मानव-मन मानव के मन से दूर आज,
मजबूर आज है,
मैं काटूंगा
मेरा ठण्डा खून गर्म है फिर से !

दिल्ली,
नवम्बर '५८

हारे हुए सिपाही का वक्तव्य

मेरे दोस्तो !
मेरे रफ़ीको !
मेरी बग़ावत के बाज़ू अगर टूट रहे है
तो इन्हें टूटने दो
शायद अब कभी मैं
ज़ुल्म के ख़िलाफ़ अपने हथियार नहीं उठा पाऊंगा
लेकिन देखना
कहीं मेरे बच्चों के नन्हे बाज़ुओं पर कोई चोट न आए
क्योंकि कल
नये सूरज को उन्हीं के कन्धों पर से उग कर आना है—
मेरे बाज़ू अगर टूट रहे है तो इन्हें टूटने दो !
मेरे दोस्तो !
मेरे साथियो !
मेरे विश्वास के पांव अगर लड़खड़ा रहे हैं
तो इन्हें लड़खड़ाने दो
शायद अब कभी इनकी धमनियों में वह गर्म ख़ून नहीं उमड़ेगा
लेकिन ख़याल रखना
कहीं दुश्मन मेरे बच्चों के मासूम पांवों को
लोहे के तंग जूतों से न जकड़ दें
क्योंकि कल
उन्हीं पांवों के बल पर इतिहास को आगे बढ़ना है—
मेरे पांव अगर लड़खड़ा रहे है तो इन्हें लड़खड़ाने दो !
मेरे दोस्तो !
मेरे रफ़ीको !

मेरे स्वाभिमान की कमर अगर झुक रही है
तो इसे झुकने दो
शायद अब कभी मैं
दुश्मन के सामने सीना तान कर खड़ा नहीं हो सकूंगा
लेकिन होशियार !
कहीं ये लोग मेरे बच्चों के सिरों पर मुर्दा परम्पराओं का बोझ लाद
उन्हें बौने न बना दें
क्योंकि कल
इन्सानियत उन्हीं के जिस्मों में अपनी तस्वीर देखेगी—
मेरी कमर अगर झुक रही है तो इसे झुकने दो !

मेरे दोस्तो !
मेरे साथियो !
मेरे विवेक की आंखें अगर बारूद के ज़हरीले धुएं से धुंधला रही हैं
तो इन्हें धुंधलाने दो
शायद अब इनके ओठों पर कभी
रोशनी की प्यास नहीं तड़पेगी
मगर सावधान !
कहीं मेरे बच्चों की भोली आंखों पर ये लोग
अपने रंगीन चश्मे न चढ़ा दें
क्योंकि कल
ज़माने का कारवां उन्हीं की आंखों से अपनी राह ढूंढेगा—
मेरी आंखें अगर धुंधला रही हैं तो इन्हें धुंधलाने दो !

मेरे दोस्तो ! मेरे साथियो !! मेरे रफ़ीको !!!

जयपुर,
नवम्बर '५८

यह सब कुछ स्वीकार कहां था ?
सुविधा-प्राप्त स्वर्ग में हरदम
जगहें कम होती जाती हैं
और वहां के मूल निवासी भी दिन-दिन छंटते जाते हैं
फिर मैं तो था निपट विदेशी
अपने सारे वैभव बल से
मुझे धकेल दिया था उसने नीचे
लेकिन तुमने
योग-शक्ति से
आने नहीं दिया धरती पर
अब मैं लटका हुआ यहां हूँ
धरा-गगन दोनों के मध्य-बिन्दु पर
पांवों को आधार नहीं है लेकिन
हाथ मचलते
चांद-सितारों को हथियाने की कोशिश में
उफ़ ! न जाने किस अनजानी प्रेत-योनि में
तुमने मुझको डाल दिया है
मुझे मुक्ति दो
और धरा पर आ जाने दो
ताकि स्वर्ग को मज़ा चखाऊं
धरती के लोगों के इतने दृढ़ हाथों में
अपने भी दो हाथ मिला कर
उसे खींच धरती पर लाऊं
गर्व तोड़ दूं
धरती वालों से मिल कर मैं
विश्वामित्र !
हटालो अपनी योग-शक्ति को !

जयपुर,
दिसम्बर '५८

सांसें और सपने

देवदत्त भाई ! चाहो तो
मेरी सांसों के सीने मे कोई शस्त्र भोंक दो
लेकिन मेरे
व्योम-विहारी
सपनों के कोमल हंसों को
तीर मार कर नही गिराओ !

सांसों पर जिन्दा हूँ लेकिन
सांसों का विस्तार सपन में ही संभव है
धरती है आधार मगर विस्तार गगन में ही संभव है
क्योंकि जिन्दगी
सांसों की सपनो के साथ सगाई
धरती और गगन का गठबन्धन है !

सपन न छीनो
गगन न छीनो
मुझसे मेरी
बढ़ने की-चढ़ने की लगन न छीनो
भले बांधलो जंजीरों से मुझको लेकिन
मेरे पंख-सधे आदर्शों की उड़ान में
सीमाएं बन कर मत आओ !
देवदत्त भाई ! चाहो तो
मेरी सांसों के सीने में कोई शस्त्र भोंक दो
लेकिन मेरे व्योम विहारी सपनों के कोमल हसों को
तीर मार कर नही गिराओ !

जयपुर,
दिसम्बर '५८

एक लोरी :

अपनी कचोटती हुई आत्मा को

सो जा !
ओ मेरी आत्मा के व्याकुल भूखे बच्चे—
सो जा !!
मेरे स्तन में दूध नही है
लेकिन
इसे काट मत
उस गुनाह की सजा न दे मुझको
जिसकी
मैं जिम्मेदार नही हूँ
ले, अपने ही हाथों अफ़ीम की
गोली देती हूँ मैं तुझको
इसको खाकर
बेहोशी के अंधियारे में खो जा
निष्क्रिय हो जा !

ओ मेरी आत्मा के भोले पागल बच्चे—
सो जा !!

मत चिल्ला
मत चीख
न रो तू
इस खाई में
जिसमें हम बैठे हैं वर्तमान में—
कौन सुनेगा तेरी चीखें ?
कोई भी ऊंचाई तेरी आवाज़ों की
इसको लांघ नही सकती है, सोजा !
ओ मेरी आत्मा के दुर्दम आकुल बच्चे—
तब तक सोया रह जब तक मैं
इस खाई में
एक बड़ी मीनार नहीं चुन लेती
वर्तमान से एक सामयिक
—अनुचित ही चाहे—संबध जोड़ कर
तेरे सारे आदर्शों को अलग छोड़ कर
(हर खाई को जो मीनारों के मलबे से
भरने को तैयार खड़े है !)
यह ऊंची मीनार
कि जिस पर पांव टिका लेने भर से
हर चीख अज़ाँ बन गूंज उठा करती है, सो जा !
तब तक सो जा !!
ओ मेरी आत्मा के भूखे व्याकुल बच्चे
मुझे क्लेश मत दे
कचोट मत ,
सो जा !

जोधपुर,
मार्च '५६

खुदकशी की कोशिश कर रहा है।
हिस्टीरिया से पीड़ित हैं कुंठा-ग्रस्त घाटियां।
अपने पौरुष की लाश पर
पुराने संस्कारों की वर्फ़ का कफ़न डाले
पहाड़ मातम मना रहे है।
वेचैन खड़े है रेगिस्तान
अपनी अतृप्त बांहें फैलाए।
झीलें
अपने कसमसाते हुए प्यार को
पाबन्दियों के किनारों में जकड़े
करवटें ले रही हैं।
अकेला चीख रहा है कुंवारी रात का अवैध वच्चा
बादलों की जवान वेटियां
जिस्म की दूकान कर रही हैं।
पत्थरों को पूज रही है मासूम कलियां।
फूलों के भोले दिमाग़
भ्रमों में उलझे हुए है।
हथकड़ियों से जकड़ी हुई है पेड़ों की शाखें।
वेलों की सांसों पर पहरा लगा है।
दूरबीनों की शक्की नज़रों से देखी जा रही है
नदियों की गति-विधियां सव।
आंधियों के आन्दोलनों को
मशीनगनों से भूना जा रहा है।
टीयर गैस से आक्रांत हैं दिशाओं की आंखें।
धरती का एक एक जोड़ दर्दा रहा है।
शायद कोई सवेरा
क्षितिज के गर्भ में छटपटा रहा है!

जयपुर,
सितम्बर ५९

आने वाले विद्रोहियों के नाम

अगर कभी ऐसा हो
कि मेरा सत्य संघर्ष की शक्तियां खो बैठे
टूट जाय
और झूठ की तरह निष्प्राण होकर राह पर गिर पड़े
तो ओ निरन्तर संघर्षशील सत्य को वहन कर
मेरी राह पर मुझसे और आगे बढ़ने वालो !
मेरे निष्प्राण सत्य की छाया से अभिभूत मत हो जाना—
नही तो मेरी अतृप्त जिज्ञासाओं की भटकती हुई आत्माएं और भटक जायेंगी,
उसके मोह को काटकर आगे बढ़ जाना !

अगर कभी ऐसा हो
कि मेरा विद्रोह जड़ता के सामने सिर झुका दे
हार जाय
और गुलामी के स्वीकरण की तरह निष्क्रिय होकर राह पर गिर पड़े
तो ओ निरन्तर प्रगतिशील विद्रोह को वहन कर
मेरी राह पर मुझसे और आगे बढ़ने वालो !
मेरे निष्क्रिय विद्रोह की लाश से चिपके मत रह जाना—
नहीं तो मेरे अधूरे अरमानों की तड़पती हुई रूहें और तड़प उठेंगी,
उसके सीने पर पांव रखकर आगे बढ़ जाना !

दौलतगढ़,
अप्रैल '४९

मेरे पास नहीं है कोई चीज तुम्हें देने को भाई !
मैं तो बस केवल स्वप्न लुटाया करता हूं—
हर मुर्दा दिल में फिर जीवन की आग जलाया करता हूं !

लो यह सपना तुम नयी सुबह की लाली का
यह सपना खेतों की सांझी हरियाली का
यह मिल पर सब मजदूरों के हक़ का सपना
यह नयी जिन्दगी और नये जग का सपना
यह दुनियां के सब लोगों के हिलमिल कर रहने का सपना
यह देशों-रंगों-नस्लों की दीवारें ढहने का सपना
यह मंदिर-मस्जिद चकलों-पागलखानों बिना समाज चलाने का सपना,
यह जेल बैंक-बाज़ार फौज़ के बिना जगत का राज चलाने का सपना
यह सपना जब मासूम बहारें आवारा गलियों में भीख न मांगेंगी
यह सपना जब ये उठती लहरें परम्परा की लक्ष्मण रेखा लांघेंगी
यह सपना जिसमें चांद पेट के लिए शरीर न बेचेगा
यह सपना जब श्रम का सूरज धन की जंजीर न खींचेगा
ये सब सपने सच बनने को बेताब, लुटाया करता हूं !
हर मुर्दा दिल में फिर जीवन की आग जलाया करता हूं !

यों स्वप्न लुटाने वाले तो बहुतेरे हैं
लेकिन कुछ अलग तरह के सपने मेरे हैं
कुछ सपने बूढ़े और बीमार हुआ करते हैं

कुछ लूले लंगड़े होते हैं, बेकार हुआ करते हैं
कुछ सपने बेबस होते हैं जो महज़ आह भरते हैं
कुछ हिम्मत वाले चट्टानों को तोड़ राह करते हैं
कुछ सपने मन के चोर हुआ करते हैं, छिप कर रहते हैं
कुछ सपने बाग़ी होते हैं, जो भी कहना हो सो कहते हैं
कुछ सपने किसी एक की कुंठाओं की सृष्टि हुआ करते हैं
कुछ सपने सारे युग-समाज की दृष्टि हुआ करते हैं
मैं लुटा रहा हूं सबको ऐसे सपने
जो सबके सांझे हैं, सबके हैं अपने

अपनी काव्य-भूमि पर मैं सपनों के बाग लगाया करता हूं !
हर मुर्दा दिल में फिर जीवन की आग जलाया करता हूं !

यह जीवन क्या है ? कुछ सपनों का मेला है
इन्सान हमेशा सपनों से ही खेला है
ये सपने ही हैं जो उसके कदमों की ताक़त बनते हैं
ये सपने ही हैं जो उसके तनमन की कुव्वत बनते हैं
ये सपने ही इन्सानों की रूहों को हरारत देते हैं
इन्सान नहीं ये सपने ही इन्सां को बग़ावत देते हैं
ये सपने हैं जो दुनियां को हर बार संवारा करते हैं
सपनों के बल पर लोग यहां हर ज़ुल्म गवारा करते हैं
सपनों के बिना इन्सान महज़ कुछ सांसों का पुतला सा है
सपने न बुलन्दी दें जो इसे, इन्सान बहुत छोटा सा है
ये सपने दिन का उजाला हैं और सांझों के सिन्दूर हैं ये
ये सपने चांद हैं रातों के, बेबाक सुबह के नूर हैं ये

मैं स्याह अंधेरी रातों में महताब उठाया करता हूं—
हर मुर्दा दिल में फिर जीवन की आग जलाया करता हूं !

भीलवाड़ा,
मई '५९

फ़ाउस्ट के कन्फ़ेशन

अपने अस्तित्व की रक्षा के लिए मैंने अपनी आत्मा को रेहन रखा था
सोचा था :
कि जब फिर मेरे पास पर्याप्त शक्तियां हो जाएंगी
उसे छुड़ा लूंगा
लेकिन मुझे क्या पता था
कि ज्यों ज्यों मेरी शक्तियां बढ़ती जाएंगी
शैतान का कर्ज़ भी बढ़ता ही जाएगा
और आख़िर जब मैं उसे छुड़ाने लायक हुआ

मेरी आत्मा नीलाम हो चुकी थी !

अपनी मिट्टी के बचाव के लिए मैंने अपने विद्रोह को सुलाया था
सोचा था :
जब मैं फिर लड़ने लायक हो जाऊंगा
उसे जगा लूंगा
लेकिन मुझे क्या मालूम था
कि वह अफ़ीम जो मैंने उसे सुलाने के लिए दी थी
उसके लिए ज़हर साबित होगी
और आखिर जब मैं लड़ने लायक हुआ
मेरा विद्रोह मर चुका था !

उफ़ !
जिसे आपद् धर्म की तरह स्वीकार किया था
उसे जीवन-दर्शन बनाने के लिए मजबूर हुआ !!

अब मैं भटक रहा हूँ—
अपने आत्मा-हीन अस्तित्व के कन्धों पर
अपने असफल विद्रोह की लाश रक्खे हुए
ताकि देख लें मेरे हम-सफ़र—
समझ लें :
कि किस तरह समझौता
—एक सामयिक समझौता भी—
विद्रोह की आत्मा को तोड़ देता है !

भीलवाड़ा
मई '५६

विष-पुरुष

पास मत आओ मेरे
मुझसे न पूछो बात कोई
मत बढ़ाओ हाथ मेरी ओर तुम सम्पर्क का—
मैं विष-पुरुष हूँ !

बहुत संक्रामक हुआ करते हैं नीले ज़हर के कीड़े
कहीं ऐसा न हो
इस ज़हर की लहरें
तुम्हारी धमनियों के रक्त में भी उमड़ने लग जायं
आग :
अन्तर में दबाए हूं जिसे मैं
झपट कर कोई लपट उसकी तुम्हें छू ले
कि ये चिन्गारियां जो
युगों से सोयी हुई हैं सर्द सांसों में तुम्हारी
आज फिर जग जायं
इसलिए मुझसे बचो
ओ वर्तमान को ज्यों का त्यों स्वीकार . .
ज़िन्दगी जी लेने की बात सोचने वालो !
आजकल विष बांटता हूँ मैं !!

बीकानेर,
अगस्त '५६

ये सपने : ये प्रेत

मुझे घेर कर   हुए हैं मेरे सपने !
क्षण भर के भी लिए चैन की सांस नहीं लेने देते हैं—
दामन पकड़े अड़े हुए हैं मेरे सपने !
मैं इनसे अभिभूत जुल्म के अंगारों पर चल लेता हूँ
मैं इनसे आविष्ट आंधियों-तूफ़ानों में पल लेता हूँ
प्रेतों से ये मेरे सिर पर चढ़े हुए है मेरे सपने !
मुझे घेर कर खड़े हुए हैं मेरे सपने !!

सपने : जिनको जन्म दिया था मैंने
दुनियां की तीखी नज़रों से छिपा-बचाकर
पाला था
पोसा था

खड़ा किया था
अब मुझसे आकर मांगते :
जीने का
सच बनने का अधिकार मांगते
जैसे किसी गरीबिन मां के भूखे बच्चे
उसका आंचल खींच खींच कर
मांग रहे हों उससे रोटी—
ऐसे पीछे पड़े हुए हैं मेरे सपने !
मुझे घेर कर खड़े हुए हैं मेरे सपने !
क्षण भर के भी लिए चैन की सांस नहीं लेने देते हैं—
दामन पकड़े अड़े हुए हैं मेरे सपने !!

कभी कभी मेरा हारा मन
दुनियां के सारे नियमों से समझौता कर
सीधे सादे ढर्रे से जीवन जीने की
बात सोच लेता है, लेकिन
ये अवैध जनवादी सपने
संघर्षों के आदी सपने
सब समझौते तुड़वाते हैं
और मुझे हर जोर जुल्म के
बेइन्साफी के खिलाफ ये
बांह उठा कर लड़वाते हैं
ऐसे पीछे पड़े हुए हैं मेरे सपने !
मुझे घेर कर खड़े हुए हैं मेरे सपने !
क्षण भर के भी लिए चैन की सांस नहीं लेने देते हैं—
दामन पकड़े अड़े हुए हैं मेरे सपने !!

बीकानेर,
अगस्त '५६

बिना कुदाल उठाए

इस शैतानों की बस्ती में इन्सान का रहना मुश्किल है!
इक ज़ुल्म तो सह भी लें लेकिन हर ज़ुल्म को सहना मुश्किल है!

सब ओर फरेबों की उलझन, सब ओर भ्रमों के जाल बिछे
इस मज़हब के आडम्बर में ईमान का रहना मुश्किल है!

होठों पर लगे हैं ताले औ' आवाज़ बिचारी कैदी है
पूरा अफ़साना दूर यहां इक शब्द भी कहना मुश्किल है!

विश्वास क़लम पर काफ़ी है, हथियार कारगर है यह भी!
पर बिना कुदाल उठाये ये दीवारें ढहना मुश्किल है!

बीकानेर,
सितंबर '५६

लाउडस्पीकरों और कठपुतलियों के देश में

हर ऊंची आवाज को झूठी समझ कर अनसुनी कर देने वालो !
यह मत भूलो :
कि सब जोर से बोलने वाले
किसी के लाउडस्पीकर नहीं होते
कभी कभी कोई इन्सान भी जोर से बोलने के लिए मजबूर हो जाता है
और विश्वास करो
कि यह जो तुम्हारे सामने ऊंची आवाज में बोल रहा है,
किसी का लाउडस्पीकर नहीं, एक जिन्दा इन्सान है !

हर खूंख्वार लड़ाई को खरीदी हुई समझ कर अनदेखी कर देने वालो !
यह मत भूलो :
कि सब शस्त्र उठा कर लड़ने वाले
किसी की कठपुतलियां नहीं होते
कभी कभी कोई इन्सान भी शस्त्र उठाने के लिए मजबूर हो जाता है
और विश्वास करो
कि यह जो तुम्हारे सामने के घमासान में जूझ रहा है
किसी के हाथों की कठपुतली नहीं, एक जिन्दा इन्सान है !

बीकानेर,
नवम्बर '५९

लोगों का विश्वास

अब तक मैंने बुना हृदय में
बस सपनों का ताना-बाना
अब तक मेरा काम रहा है
लोगों तक सपने पहुंचाना
अब उनके अनुकूल सत्य को जी न सका तो
लोगों का विश्वास सपन से उठ जायेगा !

अब तक केवल लिखने में ही
मैंने अपनी शक्ति लगायी
दुनियां के बेहतर ढांचे में
लोगों की आसक्ति जगायी
अब यदि उनके संघर्षों में उतर न पाया
लोगों का विश्वास क़लम से उठ जायेगा !

बीकानेर,
नवम्बर '५६

भूमिगत होना पड़ेगा

भूमिगत होना पड़ेगा फिर मेरे विद्रोह को अब—
लूट की सरकार अध्यादेश ज़ारी कर रही है!

अब नहीं है वक्त खुल कर जूझने का
फिर गुरिल्ला-ढंग अपनाना पड़ेगा
आग की लपटें दबा कर भी हृदय में
गीत अब बरसात का गाना पड़ेगा
कर रहा है जुल्म शस्त्रों की नुमाइश फिर सड़क पर
निहत्थी मज़बूर है मेहनत बिचारी डर रही है!

शील कुचला जा रहा है रोशनी का
आंधियों का गर्व तोड़ा जा रहा है
बांध बांधे जा रहे हैं बेबसी के
ख़ून का फिर वेग मोड़ा जा रहा है
हर उठी आवाज़ की गरदन झुकाने के लिए ही
प्रतिक्रिया एकत्र अपनी शक्ति सारी कर रही है!

जब्र को विश्वास इतना है स्वयं पर
न्याय का वह ढोंग भी करता नहीं है
आवरण क़ानून का भी है उतारे
वह किसी ईमान से डरता नहीं है
अहिंसा की आड़ की परवाह भी छोड़े हुए है—
आज सत्ता शस्त्र के मद पर सवारी कर रही है!

बीकानेर,
जुलाई '६०

प्रोमेथ्यूस : इतिहास की राह पर

पुराणो में एक प्रोमेथ्यूस था
जिसने स्वर्ग से आग चुरा कर मनुष्यों को दी थी
और देवताओं के राजा जुपीटर ने उसे एक चट्टान से बंधवा दिया था

इतिहास में भी प्रोमेथ्यूस होते है
लेकिन इतिहास में आग चुराना और चट्टान से बंधना जरूरी नहीं है
क्योंकि कोई कोई प्रोमेथ्यूस तो आग चुराता नहीं, छीनता है
जुपीटर के द्वारा बन्दी नहीं बनाया जाता, उसे हरा कर भगा देता है
और आग के साथ ही साथ जुपीटर के महलों का भी मालिक बन जाता है
तब उसे आग धरती पर ले जाकर मनुष्यों को देने की जरूरत नहीं रहती
वह खुद स्वर्ग में ही आकर रहने लगता है
और आग
फिर इस नये जुपीटर के महलों में बन्द छटपटाती रहती है
और धरती—
अंधेरे में भटकती हुई व्याकुल धरती—
फिर किसी नये प्रोमेथ्यूस का इन्तजार करती रहती है।

पाली,
नवम्बर '६१

माध्यम

मैं माध्यम हूँ !
मैं उन सबकी भटकती हुई आत्माओं का माध्यम हूँ
जो अधूरे और अतृप्त मर गये
मेरे कंठ में उनके स्वर हैं
जिन्होंने सारी जिन्दगी निश्शब्द गुज़ार दी
मेरी क़लम में उनकी आग है
जो अपनी आग अपने दिलों में दबाए हुए ही चले गये
मेरे गीतों में उनका विद्रोह है
जिनकी गर्दनें उठने से पहले ही झुका दी गईं

यह मैं नहीं उनकी आत्माएं बोल रही हैं !

जब मैं बोलने के लिए अपना मुंह खोलता हूं
कुछ भटकते हुए शब्द मेरे आसपास मंडराने लगते हैं
ये उस अंग्रेज लेखक क्रिस्टोफ़र कॉडवेल के शब्द हैं
जिसने स्पेन की आज़ादी की लड़ाई में अपनी ज़िन्दगी दे दी थी
ये इंटरनेशनल ब्रिगेड के उन सैकड़ों क्रान्तिकारी सैनिकों के शब्द हैं
जिन्हें भाप बनाकर उड़ाने के लिए नाज़ी गेस्टापो के हाथों सौंप दिया गया था
ये पोलेण्ड के उन हज़ारों मूक यहूदियों के शब्द हैं
जिन्हें ज़िन्दा दफ़नाने के लिए खुद उन्हीं के हाथों से क़ब्रें खुदवाई गयी थीं
हिटलरी वहशियत के बूटों से कुचली हुई ये मानववादी आवाज़ें
अब खुले आसमान में विचर कर लोगों के कानों तक पहुंचना चाहती हैं !

मैं माध्यम हूं !
जब मैं लिखने के लिए अपनी क़लम उठाता हूं
एक आग मेरी क़लम को घेर कर खड़ी हो जाती है
यह आग अल्ज़ीरिया की उस जवान विद्रोहिणी जमीला के दिल की आग है
अमानुषिक अत्याचारों के बल पर
जिससे वे सब अपराध स्वीकार कराए जा रहे हैं
जो उसने कभी नहीं किये
यह सीक्रेट आर्मी की शिकार उन हज़ारों अल्ज़ीरियाई मशालों की आग है
जिनकी ज़िन्दगियां
फ्रांसिसी साम्राज्यवादियों की नज़रों में
बोर्ड पर लिखी हुई संख्याओं से ज़्यादा कीमत नहीं रखती
यह आग चाहती है कि मैं इसे कागज़ों के पृष्ठों पर उतारता जाऊं
और कागज़ों के पृष्ठों से वह लोगों के दिलों तक पहुंचती जाय !

मैं माध्यम हूँ
टूटी हुई आवाजों और दबी हुई चिनगारियों का माध्यम !

जब मैं अपना साज़ संभालता हूँ
एक दर्द मेरे आसपास आकर जमने लगता है
यह कांगो के बेताज़ बादशाह लुमुम्बा का दर्द है
जो मेरे साज़ को उदास और मेरी आवाज़ को ग़मगीन बना रहा है
यह कांगो की आज़ादी के उस सिपाही का दर्द है
जिसे तेज़ाब में घोल दिया गया
और कांगो के जमे हुए खून में एक उबाल भी न आया !

मैं जब अपनी पलकें उठाता हूँ
कुछ घायल और बेतरतीब सपनों को अपने आसपास मंडराते हुए पाता हूँ
ये तेलंगाना के उस बूढ़े किसान के सपने हैं
जिसने जमीनों पर जोतने वालों का अधिकार चाहा था
और इसके इनाम में जिसके हाथ पैर काट दिये गये थे
ये उन एक सौ आठ बाग़ी किसानों की पलकों के सपने हैं
जिन्होंने अपनी पकती हुई फसलों और जवान होती हुई बेटियों को
लुटेरे हाथों से बचाने के लिए
बन्दूकें उठाली थीं
और जिनकी पलकें फांसी के तख्तों पर लाकर मूंद दी गई
ये तेलंगाना के उस नन्हे से विद्रोही गांव की सैंकड़ों स्त्रियों और बच्चों के सपने हैं
जिसे हिन्दुस्तानी सरकार के बहादुर सिपाहियों ने घेर कर अगा दी थीं
ये सपने चाहते हैं कि मैं इन्हें दुनियां के एक एक इन्सान की पलकों तक पहुँचा दूं !

मैं माध्यम हूँ
वेताव दर्दों और घायल सपनों का माध्यम!

जव मैं सोचना चाहता हूं
एक भयानक पागलपन मेरे दिमाग़ को चारों ओर से जकड़ लेता है
यह उस अमेरिकी पायलेट का पागलपन है
जिसे हिरोशिमा पर एटमवम गिराने का आदेश दिया गया था
और जो इस भीषण नरमेघ का प्रायश्चित्त अमेरिकी पागलखानों में कर रहा है
यह पागलपन व्याकुल है
कि मैं इसे हर जंगबाज़ नेता
और उसके हर वफ़ादार सिपाही के दिमाग़ तक पहुँचा दूं!

मैं माध्यम हूँ
और जव ये शब्द, यह आग और ये सपने मेरे आसपास मंडराते हैं
मैं अपने क्षुद्र से व्यक्तित्व को भूल जाता हूँ
और मुझे लगता लगता है कि मैं ही वह अंग्रेज लेखक हूं
अल्जीरिया जमीला हूँ
मैं ही रबर की तरह जमी हुई कांगो की आत्मा को हिलाने की,
कोशिश करने वाला लुमुम्बा हूँ
मैं ही तैलगांना की जमीन को अपने खून से सरसब्ज़ बनाने वाला किसान हूँ
आग में जिन्दा जलती हुई स्त्रियों और बच्चों की ये दर्दनाक चीखें
मेरे ही भीतर से उठ रही है
मैं ही वह पवित्र पागलपन से आक्रांत अमेरिकी पायलेट हूँ
ये सब मेरे ही अन्दर जी रहे हैं
मैं माध्यम हूं!

पाली,
जुलाई '६२

सच भी रोटरी मशीनों और लाउडस्पीकरों का मुहताज है
जहां बेईमानी को ही नहीं,
ईमानदारी को भी अपनी रक्षा के लिए
पैसों की ताकत का सहारा लेना पड़ता है
जहां क्रान्ति की योजनाओं की तरह उल्लास भरे प्रारम्भ वाले प्यार का अन्त
किसी निकटतम साथी की गिरफ्तारी की सी उदासी में होता है
और भोर के टटके गुलाब की सी ताज़ी सुकुमार सुन्दरता
सीलन भरी अंधेरी कोठरियों में घुट घुट कर बुझ जाती है
जहां पुस्तक-गर्भी अंगुलियां बर्तन मांज मांज कर घिस जाती है
और स्पुतनिक बना सकने वाले दिमाग
पत्थर ढो ढो कर भोंठे हो जाते है
जहां पृथ्वी की परिक्रमाएं कर सकने वाली वेलन्तिनाएँ
भारी जेबों और ऊँची कुर्सियों के आसपास भिनभिनाने वाली
फीलरें बन कर रह जाती है !

हां, मैं गद्दार हूँ'
नफ़रत है मुझे अपने 'धर्म' से
पत्थरों और पोथियों का धर्म है मेरा
नंगे शरीरों और मांगी हुई रोटियों का धर्म है मेरा
नफ़रत है मुझे अपने मठों और मंदिरो से
जहां आतंक और अज्ञान को मूर्तियों में ढाल कर पूजा जाता है
नफ़रत है मुझे मिमियाते हुए होठो और जुड़ते हुए हाथों से
नफ़रत है मुझे घिसती हुई नाकों और झुकते हुए माथों से !

मैं गद्दार हूँ !

मुझे अपनी 'संस्कृति' से नफरत है
मेरी संस्कृति अछूतों, विधवाओं और देवदासियों की संस्कृति है
ज़िन्दा जलाई हुई सतियों और वधियाए हुए सन्यासियों की संस्कृति है
बिंधे हुए नाकों, बंधे हुए दिमाग़ों और निर्धारित की हुई राशियों की संस्कृति है
समन्वय मेरी संस्कृति की सबसे बड़ी विशेषता है
वह अक्ल और बेवक़ूफी, सच और झूठ, उजाले और अंधेरे का समन्वय करती है !

हां, मैं गद्दार हूं !
नफ़रत है मुझे अपनी सरकार से
मेरी सरकार : जो सबका उदय, सबका विकास चाहती है
मेहनतकशों की मेहनत का, और आरामपसन्दों के आराम का
ग़रीबों की ग़रीबी का, और अमीरों की अमीरी का
मेरी सरकार : जिसने रोटियों और भूखे हाथों, कपड़ों औ' ठिठुरते हुए शरीरों के बीच
लक्ष्मण-रेखाएं खींच रक्खी हैं
खाली मकानों और बेघरबार लोगों के बीच पहरेदार खड़े कर रक्खे हैं
रोगियों और दवाओं के बीच कंटीले तार लगा रक्खे है
किताबों और लोगों की आंखों के बीच अंधेरे फैला रक्खे है !

मैं ग़द्दार हूं !
मुझे अपने देश, अपने धर्म, अपनी संस्कृति और अपनी सरकार से नफ़रत है
मैं ग़द्दार हूं, क्योंकि मुझे अपने लोगों से प्यार है
मैं इनके चेहरों पर बहार, इनके आंगनों में त्यौहार देखना चाहता हूं
मैं ग़द्दार हूं, क्योंकि मुझे उन जंजीरों से नफ़रत है जो इन्हें जकड़े हुए हैं
उन सीमाओं से नफ़रत है जो इन्हें बांटे हुए हैं
मैं ग़द्दार हूं—हां, सचमुच मैं ग़द्दार हूं !

उदयपुर,
दिसम्बर '६२

सिर्फ़ एक शब्द नहीं !

'कॉमरेड' !
सिर्फ़ एक शब्द नहीं,
बिजली की लाखों रोशनियों को एक साथ जला देने वाला एक स्विच है
जिसे दबाते ही
रंग बिरंगी रोशनियों की एक विश्व-व्यापी कतार जगमगा उठती है !
एक स्विच, जो वाल्ट व्हिटमॅन को मायकोवस्की से
और पाब्लो नेरुदा को नाज़िम हिक़मत से मिला देता है,
मॅक्सिम गोर्की, हावर्ड फ़ास्ट और यशपाल के बीच
एक ही प्रकाश-रेखा खींच देता है !

'कॉमरेड' !
सिर्फ़ एक स्विच नहीं, एक चुम्बन है !
एक चुम्बन, जो दो इन्सानों के बीच की सारी दूरियों को एक ही क्षण में पाट देता है

और वे इसके उच्चारण के साथ ही एक दूसरे से यों घुलमिल जाते हैं
जैसे युगों से परिचित दो घनिष्ठ मित्र हों !
एक चुम्बन, जो कांगो की नीग्रो मजदूरिन और हिन्दुस्तान के अछूत मेहतर को
एक क्षण में लेनिन के साथ खड़ा कर देता है !
एक अदना से अदना इन्सान को
इतिहास बनाने के महान् उत्तरदायित्व से गौरवान्वित कर देता है !

'कॉमरेड' !
सिर्फ एक चुम्बन नहीं, एक मंत्र है
जो बोलने वाले और सुनने वाले दोनों को पवित्र कर देता है
एक मंत्र, जिसे छूते ही अलग अलग देशों, नस्लों, रंगों और वर्गों के लोग
एक दूसरे के सहज सहोदर बन जाते हैं !
एक रहस्यमय मंत्र
जो इन्सान की आज़ादी, बराबरी और भाईचारे के लिए कुरबान होने वाले
लाखों शहीदों के मंदिरों के दरवाजे
सबके लिए खोल देता है
और साधारण से साधारण व्यक्ति उनकी महानता से हाथ मिला सकता है !

'कॉमरेड' !
दिलों को दिलों से मिलाने वाली एक कड़ी है,
शरीरों को शरीरों से जोड़ने वाली एक शृंखला है,
विषमता और भेदभाव के तपते हुए रेगिस्तान का एक मरुद्वीप है
जहां आकर जुल्म और अन्याय की आग में जलते हुए राहगीर
राहत की सांस लेते हैं,
एक दूसरे का हौसला बढ़ाते हैं।

उदयपुर,
मार्च '६१

मॅरेलिन मनरो का अन्तिम पत्र

सुनो,
ओ दुनियां के सबसे सम्पन्न और सबसे सभ्य देश के भद्र नागरिको, सुनो !
मैं जो अबतक सिर्फ़ तुम्हारे एयर कंडीशण्ड टॉकीज़ों के पर्दों

या फिल्मी अखबारों के रंगीन पृष्ठों पर से ही बोलती रही हूँ
मैं जो अबतक ओढ़े हुए व्यक्तित्व ही तुम्हारे सामने रखती रही हूँ
निर्माताओं-निर्देशकों-सवादलेखकों के शब्द ही तुम्हारे सामने दुहराती रही हूँ
आज तुम्हे अपने ही दिल और दिमाग से निकले हुए
अपने ही शब्दों से संबोधित कर रही हूँ
सुनो, ओ अमेरिका के कला मर्मज्ञ फिल्म निर्माताओ,
निर्देशको, आलोचको और दर्शको !
तुमने मुझे हमेशा नीद की गोलियां दी हैं
मेरी चेतना, मेरे विवेक, मेरे अहसास को सुलाया है
मेरे नारीत्व, मेरे व्यक्तित्व, मेरी आत्मा का होश छीना है
और मेरी भूख, मेरी प्यास, मेरे स्तनों और मेरे नितम्बों को उभारा है
मेरे होठों के रंग और मेरे बैंक बैलेंस को शोखी दी है—
मेरे शरीर को जगाया है !
इस शरीर को, जिसने अब मुझे पूरी तरह से लील लिया है
यह शरीर जो अब मेरे व्यक्तित्व का एक अंग नही, उसका दुश्मन बन गया है !
और आज मै इसे उन्ही नीद की गोलियों से सुला दूंगी
जिनसे तुमने मेरी आत्मा को सुलाया था !

ओ मेरे अपने देश और दूसरे देशों के मेरे प्रशंसको !
मेरे सौन्दर्य के ग्राहको ! मेरे अभिनय के सराहको !
मेरी तारीफ़ में छपी हुई तुम्हारे अखबारों की सतरें
तुम्हारे कलेण्डरों में टंकी हुई मेरे नंगे शरीर की तस्वीरें
मेरे नाम पर भरी हुई तुम्हारी आहें
मेरे उभारों पर भिनभिनाती हुई तुम्हारी आंखें
मेरे होठों की ओर फेंके हुए तुम्हारे चुम्बन
ये सब मेरे आसपास इस तरह मंडरा रहे हैं

जैसे किसी गन्दे अधसूखे नाले के कीचड़ में पड़ी किसी इन्सान की लाश के आसपास
घिनौनी मक्खियां, जौकें और केंकड़े मंडरा रहे हो
और यह सब मेरे लिए असह्य है !

ओ व्यक्तिगत स्वतंत्रता का ढिंढोरा पीटने वाले मेरे देश के रहबरो !
मैं राजनीति नहीं जानती
समाज और व्यक्ति के उलझे हुए सम्बन्धों को नहीं समझती
पर एक सीधी सी बात पूछती हूँ
कि उन सब के लिए तुम्हारी इस व्यक्तिगत स्वतंत्रता का क्या मतलव है
जिन्हें तुमने व्यक्ति वनने का मौका ही नही दिया !
तुमने मुझे मात्र एक शरीर बना कर रक्खा
एक शरीर : जो खूबसूरत है, जवान है, भोग्य है
एक शरीर : जो किसी की मां नही, वहिन नहीं, वेटी नहीं
किसी की पत्नी, प्रेयसी, मित्र कुछ भी नही है
महज़ एक शरीर—
सैंतीस–तेईस–सैंतीस का एक मॉडल !

मेरी टेबिल पर कपड़े के दो खिलौने पड़े है
एक बाघ है और एक मेमना
कल ही मैं इन्हें खरीद कर लाई हूँ
कितना भयानक, कितना खूंख्वार है यह बाघ
और कितना मासूम, कितना निरीह है यह मेमना !
पता नहीं क्यों यह विचार मेरा पीछा नहीं छोड़ रहा है
कि यह मेमना मैं ही हूँ
और यह बाघ ?—इस मासूम मेमने को निगलने वाला यह बाघ ?—
मैं सही शब्द चुनना नहीं जानती

शायद यह तुम्हारा फ़िल्म उद्योग है
शायद तुम्हारे बाज़ार और बैंक हैं
शायद ····· ····· शायद तुम्हारे समाज का यह ढांचा है !
रात उदास है
और खिड़कियों पर जमती हुई वर्फ़ की फ़ुहार में
किसी रहस्यपूर्ण षड्यन्त्र की फ़ुसफ़ुसाहट है
मेरा सिर नींद से भारी हो रहा है
अब मेरे पास सिर्फ़ एक गोली बची है
आखिरी और छत्तीसवीं गोली !
और इसके बाद मैं गहरी नींद सो जाऊंगी
ऐसी नींद, जिससे मुझे कोई न जगा सकेगा !

मैं तुम सब की आभारी हूँ, ओ मेरे देश वासियो !
मैंने इस छोटे से जीवन में बहुत कुछ पाया है
पैसा, प्यार, शोहरत, इज्ज़त सब कुछ
दस लाख डालर का बैंक-बेलेन्स, बेवर हिल्स पर एक शानदार कोठी,
दसियों कारें और लाखों लोगो के आकर्षण का केन्द्र यह शरीर
मैंने अपने जीवन में बहुत कुछ पाया है
सिर्फ़ एक छोटी सी इच्छा शेष है :
कि कोई बिल्कुल अजनबी व्यक्ति
बिना मेरे बैंक-बेलेन्स और शरीरिक उभारों को अपनी आंखों से टटोले हुए
बिना मेरी सुन्दरता और शोहरत से प्रभावित हुए
बिना जाने कि मैं हालीवुड की रानी मनरो हूँ
मुझे एक आइसक्रीम खिलाता
या सहज स्नेह से सिर्फ़ मेरे गाल थपथपा देता, बस !
अब मैं सो रही हूँ !!

उदयपुर,
मार्च '६१

संवेदनाओं के क्षितिज

तुम ठीक कहती हो, मेरी महबूब !
कि मैं तुम्हें पूरे दिल से प्यार नहीं करता
पर मैं पूरा दिल कहां से लाऊं ?
मैं तुम्हें कैसे बताऊं
कि जब मेरे दिल का एक हिस्सा तुम्हारे प्यार में खोया हुआ होता है

उसका दूसरा हिस्सा
एक शत्रुतापूर्ण तूफानी समुद्र में अपनी मंजिल की ओर बढ़ते जा रहे
एक छोटे से जहाज के साथ मंडरा रहा होता हैं
और वह जहाज है :
साम्राज्यवाद के समुद्र में नहीं डूबने का सकल्प लिये हुए—
क्यूबा ।

और जब मैं तुम्हें अपनी गोद में लिटाए हुए
तुम्हारे केशों में अपनी अंगुलियां फिरा रहा होता हूँ
मेरे विचार हाथों में बन्दूकें लिये
वियतनाम के बीहड़ जंगलों में घूम रहे होते हैं
और अमेरिकी हवाई जहाजों से बरसाए जा रहे
घने जंगलों और विद्रोही गावों को नष्ट करने वाले जहरीले रासायनिकों की गंध
मेरी नाक में चुभ रही होती है ।

मैं तुम्हें पूरे दिल से प्यार कैसे करूं ?
कि जब मेरे बाएं कन्धे पर सिर रख कर तुम सो रही होती हो
और कहती हो
कि इस तरह तुम्हारे कन्धे पर सिर रख कर सोना मुझे इतना अच्छा लगता है
कि चाहती हूँ कि जन्म-जन्मान्तर तक इसी तरह पड़ी रहूँ
तब मेरे दाहिने कन्धे पर मैं
अपने साथियों, अपने समाज और मनुष्यता के प्रति
अपने दायित्वों का बोझ महसूस करता हूँ
और जब मेरे होठ
एक उन्मद, मधुर चुम्बन की कल्पना में तुम्हारे होठों की ओर बढ़ रहे होते हैं

मेरी आंखों में सुदूर अतीत का एक दृश्य कौंध जाता है :
हावर्ड फ़ास्ट के उस आदि-विद्रोही स्पार्टकस का दृश्य
और छह हज़ार गुलामों की लाशें मेरे दिमाग़ में बिछ जाती है
अपने मालिकों के लिए एक दूसरे का खून बहाते हुए ग्लेडिएटरों की विवशताएं
मेरे दिल को कटुता से भर जाती हैं
और तुम्हारे मांसल गालों को छूती हुई मेरी अंगुलियों में
राइफ़ल के वोल्ट का एक कठोर स्पर्श जागने लगता है।

तुम ठीक कहती हो
सचमुच मैं तुम्हें कभी भी पूरे दिल से प्यार नही कर पाता
लेकिन प्यार ही क्यों
कोई ख़ुशी, कोई ग़म भी तो मैं पूरे दिल से नहीं मना पाता
मेरी हर खुशी पर सैंकड़ों अवसादों के साये है
और मेरे हर अवसाद की कारा में सैंकड़ों आशाओं की खिड़कियां.........

कि जिस दिन मैं "राहुल" के प्रकाशन की खुशी मना रहा था
क्यूबा का इन्कलाब ज़ंगी जहाज़ों से घेरा जा रहा था
और साम्राज्यवाद का जूआ तोड़ फेंकने वाले दो पड़ोसी देशों की सेनाएं
हिमालय की बर्फ़ को इन्सानी खून से रंग रही थी।

कि अपनी नौकरी छूटने की खबर की उदासी
मैंने नाज़िम हिक्मत की कविता "तुम्हारे हाथ और यह झूठ" से काटी थी
और कई महीनों की बेकारी और भटकन के बाद जब मुझे फिर काम मिला
अल्जीरिया के स्वतंत्रता-आन्दोलन को

सीक्रेट आर्मी ऑर्गेनाइज़ेशन की हत्याएं आतंकित कर रही थीं।

और उस दिवाली की रात तुम्हें याद है ना ?
जब हम मोमबत्तियों की कतारों मे खिले हुए बच्चों की तरह खुश हो हो कर
फुलझड़ियां और पटाखे छोड़ रहे थे
मैं एकाएक उदास हो उठा था
क्योंकि एक पटाखे की आवाज़ मुझे उन गोलियों की आवाज़ के नज़दीक ले गयी
जिनसे बगदाद की सड़कों पर मेरे अरमानों के सीने दागे गये थे।

तुम ठीक कहती हो कि मैं तुम्हें......
लेकिन मैं क्या करूं ?
मेरे ज्ञान ने मेरी संवेदनाओं के क्षितिज कितने फैला दिये है
कि दुनिया के कोने कोने में मैं अपने दोस्तों और दुश्मनों को देख रहा हूँ
मेरे दोस्त, जो मेरे दुश्मनों से एक निर्णायक लड़ाई में जूझ रहे है
और पेरिस के किसी चौराहे पर फहरता हुआ मज़लूमों का एक बुलन्द इरादा,

जंजीबार मे उठी हुई मुट्ठियों का एक जुलूस,
न्यूयार्क में रंगभेद के खिलाफ़ कड़कता हुआ एक नारा,

मुझे इस तरह रोमांचित कर जाता है
जिस तरह महीनों की जुदाई के बाद तुम्हारा पहला आलिंगन।
और टोकियो में एक मजबूरन टूटी हुई हड़ताल,

लियोपोल्डविल में एक गिरफ्तारी,
सिंगापुर में झुकी हुई गर्दनों का एक वापस लिया हुआ आन्दोलन

मेरे दिल पर अंवसाद का इतना बोझ रख जाता है
कि मैं घण्टों तक किसी से बात भी नही कर पाता।

वनस्थली विद्यापीठ,
दिसम्बर '६३

एक
विराट्
पवित्रता

ये अवश क्षण

ये अवश क्षण हैं नहीं विश्वास के लायक
न करना
उफ़ !
अरे विश्वास मुझ पर !!
यह गर्मी :

गर्म हवाओं, गुनाहों का मौसम
पता नहीं कब क्या हो जाये।

इतनी सट कर आज न बैठो
और न अपने नये धुले केशों को
मेरे हाथों पर झुकने दो
मत तोड़ो इनकी समाधि तुम
अपनी चेअर दूर हटालो
इतनी दूर—
कि गंध तुम्हारे क्वांरे तन की
मुझ तक पहुंच न पाये
गंध : कि जैसे धूप तपी धरती पर
पहली बूंद पड़े वर्षा की औ' उड़ जाये।

इस सन्नाटे भरी दुपहरी में जाने क्यों
आंखों की मुस्कान तुम्हारी
मेरे मन की अगम घाटियों में ऐसे तिरती है
जैसे
चांदी की नन्हीं अनगिनत घंटियों के निर्मलतम तरल स्वरों की
सिहराती ठण्डी बौछारें
और जागने लगती हैं उद्दाम वेग से
प्रकृति की अज्ञात कन्धी—कौन जाने किस तरह की—[illegible] :
नींद में सोये भयानक [illegible] !
इसलिये तुम
आज मत करना शरे

बड़ी बड़ी बातें

तुम प्यार नहीं दे सकती हो
इन्कार करो
क्यों बड़ी बड़ी बातें बेकार बनाती हो।

जानता हूँ जिन्दगी में प्यार कितना है जरूरी
अपनी अपनी है लेकिन सबकी मजबूरी
हिम्मत हो अगर बग़ावत की आओ हम प्यार करें

रस्मों की कड़ी चुनौती को स्वीकार करें
पर अगर नहीं आ सकती हो तो साफ़ कहो
क्यों धोखेबाज़ इशारों में मुझको उलझाती हो ?
तुम प्यार नही दे सकती हो
इनकार करो
क्यों बड़ी-बड़ी बातें बेकार बनाती हो।

मेरे चलने का मक़सद है मैं यों ही नहीं चला करता
मेरी आंखों में मंज़िल का ही सपना सिर्फ़ पला करता
मंज़िल हो वही तुम्हारी तो आओ हम साथ चलें
ले मन मे मन की चाह, हाथ में हाथ चलें
पर अगर नहीं चल सकती हो पथ से हट जाओ
क्यो राह रोक मेरी मुझको फुसलाती हो ?
तुम प्यार नही दे सकती हो
इनकार करो
क्यों बड़ी-बड़ी बातें बेकार बनाती हो।

मैं द्वार तुम्हारे आया था सागर लेकर
तुम तृप्त हो गई सिर्फ़ एक गागर लेकर
क्षमता हो तो अब भी अपना विस्तार करो
मेरे पूरे अभिनन्दन को स्वीकार करो
पर अगर नहीं कर सकती हो खुल कर बोलो
क्यों अपनी इस कमज़ोरी को बहिनापे में बहलाती हो ?
तुम प्यार नही दे सकती हो
इनकार करो
क्यों बड़ी-बड़ी बातें बेकार बनाती हो।

भीलवाड़ा,
अक्टूबर '५८

मत देखना इस ओर

तुम अगर गुज़रो कभी इस द्वार के नज़दीक से
मत देखना इस ओर—
आंखें फेर लेना।

क्योंकि सम्भव है कहीं पर देख कर मुझको कभी
मरजाद की ठण्डी-जमी पर्तों के नीचे से उमग
इन्सानियत का गर्म सोता
फूट पड़ने को बहुत बेताब हो जाये
संस्कारों की विरासत का समूचा जोर
दिल से उमड़ने वाले कुदरती प्यार को ना रोक पाए।

पर अगर
हिरन के मासूम बच्चे की तरह भटकी तुम्हारी ये नज़र
पत्नीत्व के सीधे सरल सम्बन्ध की चौड़ी सड़क को छोड़कर
पहुँच जाए फिर अचानक ही कभी
इन प्यार की उलझी हुई पगडण्डियों पर
तो मेरी कसम है तुमको
कि अपनी आंख को मत छलछलाना
सामने 'उनके' न कमज़ोरी बताना
बना कर कोई बहाना
सिर झुका कर निकल जाना
और अकेले में कहीं जाकर
उजाले की निगाहों से ये अपना
ज़र्द हारा मुंह छिपाकर
दबे अश्रु बिखेर लेना !

तुम अगर गुज़रो कभी इस द्वार के नज़दीक से
मत देखना इस ओर—
आंखें फेर लेना !

जयपुर,
नवम्बर '५८

तुम नहीं हो

वह
जिसे मैं प्यार करता हूँ
कि जिसके एक सौंधे स्पर्श पर मैं
ज़िन्दगी पूरी की पूरी वार सकता हूँ
वह तो मेरी पलक पर छाया हुआ बस एक रेशम का सपन है
—स्वयं मेरी दृष्टि का वह तो सृजन है—
तुम नहीं हो—

—बात इतनी है :
कि मेरे स्वप्न के मदहोश नक़्शों से
तुम्हारे नक़्श मिलते हैं
न जाने क्यों ?

जयपुर,
दिसम्बर '५८

प्यार-दुःशासन

लो !
खींचता है प्यार का मेरा दुःशासन
जीर्ण
—पीले विधि-निषेधों के ज़हर से सिक्त—
बीती सभ्यता के आवरण का चीर
तुम्हारी बन्दिनी इन्सानियत की
द्रौपदी की देह पर से
समय-रथ के चक्र से कुचले हुए
(आदि)
समय-रथ के चक्र से कुचले हुऐ
हारे
तुम्हारे
संस्कारों के नपुंसक पांडवों के सामने ही।
देखते हैं :
एक मरणासन्न
अन्तिम सांस लेती व्यवस्था का कृष्ण
और कब तक ढांक पाता है !

जयपुर,
मार्च '५९

इसलिए : एक निष्कर्ष

मीरां नहीं हो तुम
न मैं ही हूँ तुम्हारा गिरिधर लीलाधाम
तुम्हारे ओठ छूकर भी
ज़माने का ज़हर अमृत नहीं होता
न मेरे चाहने भर से ही बनता है
तुम्हारी ओर बढ़ता सांप
शालिग्राम।
इसलिये
तुम ज़हर का प्याला उठा कर
आज राणा के ही होंठों से लगाने के लिए
जी कड़ा करलो
और मैं ?
मैं अभी इस सांप का सिर कुचलता हूँ !

जयपुर,
अप्रेल '५६

कितनी जल्दी !

(एक भविष्यवादी कविता जो सच होते होते बच गई)

कितनी जल्दी सभ्य हो गई हो तुम, सचमुच !
शादी क्या की है तुमने
बस दो ही दिन में
दुनियां भर के शिष्टाचार का पाठ पढ़ लिया
धन्यवाद के उचित पात्र पतिदेव तुम्हारे
कुछ ही दिन की सोहबत से जिनकी
तुझ जैसी बेबाक् जंगली लड़की ने भी
हाथ जोड़ अभिवादन करना सीख लिया है
पहले केवल बैठी बैठी फूहड़ हंसी हंसा करती थी
पानी मांग बैठता तो

कितनी बातों के बाद कभी लाया करती थी
वह भी देते वक़्त हाथ में
कपड़ों पर भी थोड़ा डाल दिया करती थी
किन्तु आजकल जब भी आता हूँ
बिन कहे चाय का प्याला लेकर आ जाती हो
याद करो कैसी शरारती थी कुछ दिन पहले तक
देखो मेरी इस उंगली पर
यह निशान अब तक भी बना हुआ है
जहां काट खाया था तुमने !
पहले तो तुम बिल्कुल गंवार थी सचमुच
किसी दूसरे के भावों का
कुछ भी ध्यान नहीं रखती थी
जब भी कभी तुम्हारा छोटा भाई
किसी पत्र में छपी हुई कोई मेरी ही कविता
लाकर तुम्हें दिया करता था
मेरी ही आंखों के आगे तुम बस
एक पंक्ति पढ़
मुंह बिचका कर फेंक दिया करती थी
लेकिन शादी के बाद न जाने कैसे इतनी बदल गई हो
कल ही तुमने अपने पति के आगे
मेरी कविताओं की
कितनी अधिक प्रशंसा की थी !
पहले मैं जाने को होता तो तुम
कसकर पैंट पकड़ लेती थी
अब कितने शालीन ढंग से
फाटक तक आ मुझे विदा करती हो—
कितनी ज्यादा सभ्य हो गई हो तुम सचमुच !!

मोलवाड़ा,
मई '५६

प्यार अभी मजबूर है !

लगातार चल रही है फ़रहाद की कुदाल, लेकिन
बहुत बड़ा है अभी परंपराओं का पहाड़
फादना तो चाहती है शीरी की चाहें, लेकिन
बहुत ऊंची है अभी सरमाये की दीवार
फंदों के साथ जाली हीरों की चीखें अभी
चुभती ही जा रही है राझों की रूहों में
खोजता ही फिर रहा है मजनूं अभी लैला को
वादी की रेतों के चलते फिरते टूहों में
पेड़ पर टंका पड़ा है मिर्ज़ा का तरकस अभी
साहियां की प्रार्थना बेकार होती जा रही है
डाडो सी चल रही है महीवाल की बाहें, लेकिन
व्यवस्था के बर्फ़ानी सन्नाटे मे
सोहिनी की डूबती पुकार खोती जा रही है
रस्मो की उमड़ती हुई चिनाव में
गल रहा है प्यार का कच्चा घड़ा
किनारा अभी दूर है—
प्यार अभी मजबूर है !

भीलवाड़ा,
जून '५९

ऐन शाम को

दिन भर मैं दिन के पंजों से जूझ रहा होता हूँ लेकिन
ऐन शाम को शामें मुझ पर हावी हो जाती है अक्सर !

कुछ अजीब होता है सूरज का जादू
अन्तर की उलझी गांठें खुल जाती हैं
सतरंगी उजियाले के निर्मल जल में
मन की सारी कुंठायें धुल जाती हैं
दिन भर मैं किरणों के रथ पर चढ़कर चल लेता हूँ लेकिन
ऐन शाम को हार अकेला बैठा रह जाता हूँ पथ पर !

दिन में कई कथानक बनते रहते हैं
जो अपने में दिल को उलझाये रखते हैं
जीवन के इतने रूप दिखाई पड़ते हैं
जग का, मन का सम्बन्ध बनाये रखते हैं
दिन भर मैं दुनियां भर के दुख दर्द देखता रहता हूँ पर
ऐन शाम को मेरा अपना दर्द उभर आता है फिर फिर !

बीकानेर,
दिसम्बर '५६

तब तक मुझे घेरे रहो
उस विराट् पवित्रता से मुझे छुए रहो
क्योंकि कुछ ही क्षण बाद
अपने आप तुम्हारा आलिंगन ढीला पड़ जाएगा
और हम दो टकराकर कौंध चुके बादलों की तरह
अपने अपने घायल अस्तित्व को देख रहे होंगे
और सोच रहे होंगे
कि क्यों अब हमारा सान्निध्य बिजली नहीं चमकाता
और तब
तुम्हारे चेहरे पर उभरती हुई मुस्कान में मुझे बनावट नज़र आएगी
और मेरे लहजे से निकलती हुई अभिमान की गंध
तुम्हें असह्य लगने लगेगी
हम फिर स्वयं के छोटे छोटे घेरों में घिर कर रह जाएंगे
फिर तुम मेरे लिए किये गये अपने त्यागों का हिसाब करने लगेगी
और मैं तुम्हारे लिए सुनी हुई प्रताड़नाएं गिनने लगूंगा
तुम मेरे किसी दोस्त की नक़ल निकालोगी
और मैं तुम्हारी किसी सहेली का मज़ाक उड़ाऊंगा,
फिर वही लेन-देन
हिसाब-किताब
शिकवा-शिकायत
शायद हमारी क्षुद्र आत्माएं
उस विराट् को अधिक देर तक धारे नहीं रह सकती
इसलिए जब तक तुम्हारे स्पर्श में शिरीष के फूल खिले हुए है
तुम्हारे केशों में रातरानी की खुशबू है.
तुम्हारी सांसों में इन्सानियत की गर्मी है
तब तक ठहरी रहो,
अपनी इन मृणाली बाहों से मुझे इसी तरह घेर कर ठहरी रहो!

भीलवाड़ा,
जनवरी '६०

प्यार : चार अस्वीकृतियां

प्यार कोई किसी अख़बार का मॅट्रीमोनियल अॅडवरटाइज़मेंट
वाला कॉलम तो नहीं है
कि उसके माध्यम से किसी अच्छे से पति या किसी
अच्छी सी पत्नी की खोज की जाय
और अपनी सफलता पर बधाइयां पाई जांय।

प्यार कोई व्यावसायिक फ़र्म या फैक्ट्री तो नहीं है
कि उसके शेयर ख़रीदने से पहले उसके नफ़े-नुकसान का पूरा
अन्दाज़ लगा लिया जाय
और अपनी बुद्धिमानी पर गर्व किया जाय।

प्यार कोई प्रतिष्ठा के लिए लड़ी जाने वाली कुश्ती तो नहीं है
कि अपने स्टेटस के पहलवान से ही लड़ी जाय
और उसकी हार पर मिठाइयां बांटी जांय।

प्यार कोई किसी प्रतियोगिता का प्रथम पुरस्कार तो नहीं है
कि सबसे ज्यादा नम्बर पाने वाले को ही दिया जाय
और अपनी न्यायशीलता पर तालियां सुनी जाये।

बीकानेर,
जनवरी '६०

एक द्वन्द्वात्मक स्थिति

समस्या

दर्द बड़ा है
गीत हैं ओछे
पूरा दर्द नहीं कहपाते ;
प्यार वड़ा है
मीत हैं ओछे
पूरा प्यार नहीं सह पाते !

समाधान

दर्द कितना भी वड़ा हो
व्यर्थ है उसका वड़प्पन
जब तलक वह गीत में आता नहीं है
गीत कितना भी सुघड़ हो
व्यर्थ है उसकी सुघडता
जब तलक वह दर्द को पाता नहीं है !
प्यार कितना भी खरा हो
व्यर्थ है उसका खरापन
जब तलक वह मीत को भाता नहीं है
मीत कितना भी सुभग हो
व्यर्थ है उसकी सुभगता
जब तलक वह प्यार कर पाता नहीं है !

भीलवाड़ा
जून '६०

जब से प्यार करने लगा हूं

सच, जान !
जबसे मैं तुमसे प्यार करने लगा हूं
मुझे धरती तंग-तंग सी लगने लगी है !

लगता है जैसे आसमान सिकुड़ता जा रहा हो
सूरज कम चमकने लगा हो
चांद की मुस्कुराहटें पीली पड़ती जा रही हों
मैदानों के विस्तार कम होते जा रहे हों

नदियों के पाट सिमटते जा रहे हों
सच, जान !
जबसे मैं तुमसे प्यार करने लगा हूं
मुझे पृथ्वी छोटी-छोटी सी लगने लगी है !

लगता है मेरा मकान हमारे लिए बहुत छोटा है
सीढ़ियां बहुत संकरी है, छतें बहुत नीची हैं
किवाड़ों और खिड़कियो का वार्निश बहुत फीका है
मेरा कोट अब मुझे तंग और ऊंचा हो गया है
यह राईटिंग टेबल अब छोटी पड़ने लगी है
सच, जान !
जबसे मैं तुमसे प्यार करने लगा हूँ
मुझे धरती सिकुड़ी-सिकुड़ी सी नज़र आने लगी है !

सच, जबसे मैंने तुम्हारी मुस्कानों को चूमना सीखा है
खिलखिलाते हुए खेतों के होठों पर
सरसराती हवाओं के चुम्बन मुझे ओछे-ओछे से लगने लगे हैं
जबसे तुम्हारी आखों की गहराइयों में झांकना सीखा है
समन्दरों की अथाह नीलिमाएं मुझे उथली-उथली सी लगने लगी हैं
जबसे तुम्हारे प्यार की विराट् बांहों में घिरना सीखा है
आकाशों की विशालताएं मुझे क्षुद्र-क्षुद्र सी लगने लगी हैं
सच, जान !
जबसे मैं तुमसे प्यार करने लगा हूं
मुझे धरती तंग-तंग सी लगने लगी है !

बीकानेर,
दिसम्बर '६०

बर्फ पिघलने के बाद भी

कैसे फिराते हो तुम मेरे शरीर पर अपनी अंगुलियां, प्राण !
कौन सा जादू भरा है इनमें
कि कस कस जाते हैं मेरे शरीर के सितार की सारी नसों के तार

थिरक उठता है मेरी नसों में
शताब्दियों से सोया हुआ कोई आदिम संगीत
मंत्रमुग्ध सा तुम्हारी अंगुलियों की लय में
नाच नाच उठता है मेरे तन-मन का एक एक अंग
समन्दर की अदम्य लहरों की तरह
तुम्हारी अंगुलियों की किरणों के इशारों पर।
और जाग जाग उठती है
मेरे लहू की अथाह गहराइयों में बेहोश
प्रागैतिहासिक युग की हजारों कविताएं।

कोनसा दर्द,
कोनसी आग भरी है तुम्हारी इन अंगुलियों में प्राण!
जो सैकड़ों रेगिस्तानों की व्याकुल प्यास
मेरे रोम रोम में रख जाती है
कि जब मेरे अस्तित्व की जड़ सीमाएं
चरम-सुख के तरल बेसुध क्षणों में घुलने लगती है
और मैं तुम्हारी बांहों की अभय देती हुई शाखाओं में
अपनी गरदन झुलाए हुए
एक अलसाई हुई लता की तरह खो जाती हूँ
तब भी मुझे लगता है:
कि अनलांघी घाटियों और पहाड़ों की क्वांरी बर्फ़ पर पड़े
पहले पद-चिन्हों की तरह
सदियों तक मौन सहती रहूँगी अपने वक्ष पर
संजोकर रक्खूंगी
तुम्हारी अंगुलियों से लिखे इन घावों को
बर्फ़ के पिघल जाने के बाद भी।

भीलवाड़ा,
नवम्बर '६१

यह बस्ती बटमारों की !

मैं प्यार बेचती हूँ !

(मक्खे भवानी)

जी हां हुजूर मैं प्यार बेचती हूँ—
मैं तरह-तरह के किसम-किसम के प्यार बेचती हूँ !

यह प्यार प्रगल्भ व्याहिता का, यह प्यार अधीर कुंवारी का
यह प्यार स्वकीया का, परकीया का, यह प्यार विमुक्ता नारी का
यह प्यार हकीकी है, यह प्यार मजाज़ी है
यह प्यार रिन्द है, सूफ़ी है, यह प्यार नमाजी है
यह शुद्ध भारती प्यार जो पहले आंख मीच कर शादी कर लेता है
फिर या तो आहें भरता है या धीरज धर लेता है
यह प्यार बोर्जुआ है, यह जनवादी है
यह प्यार रुहानी है, यह माद्दी है
यह प्यार खींचता और छिपा लेता है, यह मॅग्नेटिक है
यह प्यार पुकारा तो करता पर मिलने से डरता है—यह प्लेटोनिक है
जी हां हुजूर मैं प्यार बेचती हूँ—
मैं तरह तरह के, किसम-किसम के प्यार बेचती हूँ !

जी राष्ट्रीय यह प्यार जो केवल मुस्काता है
जी पार्कीय यह प्यार, पार्क में बिठलाता है
जी कॉलेजी यह प्यार सिर्फ़ बातें करता जो
प्रैस्क्राइब्ड कोर्सों से बाहर जाने में डरता जो
जी यह पिकनिक का प्यार जाग कर सो जाता है
ताश के पत्तों में मिल मिलकर खो जाता है
यह प्यार त्रिकोणी है, फ़िल्मों वाला, जो एक साथ दो रोल किया करता है
हर शाम रूठता रेस्त्रां में हर सुबह फ़ोन पर बोल लिया करता है
यह प्यार साल भर तक चलता गारन्टी-धारी है
यह हफ़्ते के हफ़्ते मिलता है फ़ुरसत में—रविवारी है
जी हां हुज़ूर मैं प्यार बेचती हूं—
मैं तरह-तरह के, किसम-किसम के प्यार बेचती हूं !

यह प्यार मौसमी है कुदरत के हाथों में जो पलता है
यह बिजली से पकने वाला, जो बिन मौसम फलता है
यह क्लोरोफ़िल-संयुक्त प्यार जो ख़ून साफ़ करता है
यह सर्व विटामिन-युक्त, शिथिल-तन में जीवन भरता है
यह प्यार हरा है, कच्चा ही खाया जाता है
यह प्यार मसाला डाल पकाया जाता है
यह प्यार ज़रासा सख़्त और यह खस्ता है
यह प्यार थोड़ा सा मंहगा है, यह सस्ता है
यह प्यार विलायत से आया, यह देसी है
जी वैसा ही लें आप, आपकी रुचि जैसी है
जी हां हुज़ूर मैं प्यार बेचती हूं—
मैं तरह-तरह के, किसम-किसम के प्यार बेचती हूं !

जी चाहे आप प्यार लें मान-भरा अभिमान भरा
जी चाहे आप प्यार लें वचन-भरा, मुस्कान-भरा
जी अगर आप विकसित-रुचि है, यह रूठने वाला ले
जी अगर आप क्षणजीवी है, यह झटपट उठने वाला ले
जी अगर चूर हो मेहनत से यह प्यार थकान मिटाता है
जी अगर घिरे हों चिंता से यह प्यार ग्रन्थि सुलझाता है
जी अगर आपका दिल वहले यह प्यार यहां रो सकता है
जी अगर आप नाराज़ न हों यह प्यार खफ़ा हो सकता है
जी आज्ञा दें यह प्यार आपके संकेतों पर मरता है
जी बस यह ले लें आप, आपको यही सूट करता है
जी हाँ हुज़ूर मैं प्यार बेचती हूँ—
मैं तरह-तरह के, किसम-किसम के प्यार बेचती हूँ !

जी वैसे तो यह प्यार-फ़रोशी ठीक नहीं है
पर फिर भी आखिर विजनेस है, कोई भीख नहीं है
फिर इस बाज़ारू युग में जी इतना तो बहुत ज़रूरी है
इस लाभ-शुभी ढांचे में यह क्रय-विक्रय तो मजबूरी है
यहां ज्ञानों की-विज्ञानों की नीलामी बोली जाती है
यहां सच्चाई भी सोने के सिक्कों में तोली जाती है
यहां आस नहीं, उम्मीद नहीं, यहां ख़्वाब खरीदे जाते हैं
साहित्य-कला ही नहीं दिलोदीमाग़ खरीदे जाते हैं
जब न्याय यहां विकता है, ईमान यहां बिकता है
खुले आम आवाज़ लगाकर इन्सान यहां बिकता है
तब कौन ग़ज़ब हो गया अगर मैं प्यार बेचती हूं !
जी हां हुज़ूर मैं प्यार बेचती हूँ—
मैं तरह-तरह के किसम-किसम के प्यार बेचती हूं !

जयपुर,
अक्तूबर '५७

भौंको, कुत्तों, भौंको !
जी भर भर कर भौंको !!
तुम्हें भौंकने की आज़ादी
कितने भीषण संघर्षों के बाद मिली है
इस सुविधा को
चुप्पी की भट्ठी मे यों मत झोंको !!
भौंको, कुत्तों, भौंको !!

अपना नया विधान बनाया है अब तुमने
और राष्ट्र को गणतन्त्रात्मक प्रजातन्त्र की संज्ञा दी है
सोच समझ कर ही आखिर स्वयं तुम्हारे प्रतिनिधियों ने
इस विधान में
भाषण की आज़ादी की धारा जोड़ी है
क्योंकि तुम्हारी मूल वृत्तियों के अति गहरे विश्लेषण के बाद
निकाला है निष्कर्ष उन्होंने :
कि रोटी, कपड़े औ' मकान के बिना
रहा जा सकता है कुछ दिन तक, लेकिन
भौंके बिन क्षण भर तक भी जिन्दा रह सकना
तुम लोगों के लिये एक दम नामुमकिन है
इस नवीन अन्वेषण की गरिमा को समझो
और राष्ट्र के पावनतम विधान को
–जिसने तुम्हें भौंकने की आजादी दी है—धो को !
भौंको, कुत्तों, भौंको !!

जयपुर,
अगस्त '५५

घोड़ों का अर्थशास्त्र

दौड़ो, घोड़ों, दौड़ो !
जोर लगा कर दौड़ो !
होड़ लगा कर दौड़ो !
जो पीछे रह जाय दौड़ में
उसे वहीं पर छोड़ो !
दौड़ो, घोड़ों, दौड़ो !!

पहले मिल कर बहुमत से कुछ रेफ़री चुन लो
दौड़ के नियम करो सब निश्चित
—अपना स्पष्ट विधान बनालो—
उनसे कह दो
नियम देख कर करें न्याय वे
साथ साथ दौड़ें और देखें

कौन निकलता किससे आगे
सबसे पहले
कौन पहुँचता है मंज़िल पर;
उनसे कह दो
ध्यान रखें वे
दौड़-जीत के लिए न कोई
ग़लत साधनों को अपनाए
कोई घोड़ा
किसी अन्य घोड़े को
अड़ा टांग में टांग कहीं पर नहीं गिराए
सिर्फ़ दौड़ में उसे हराए
सबको दौड़ लगा सकने की
पूरी पूरी आज़ादी हो
जब चाहे जो दौड़ लगाए
होड़ लगाए
हारे
जीते
जीये
या मर जाए !
तो हो जाओ तैयार
विसल बजने वाली है, दौड़ो !
दौड़ो, घोड़ों, दौड़ो !
ज़ोर लगा कर दौड़ो
होड़ लगा कर दौड़ो !
जो पीछे रह जाय दौड़ में
उसे वहीं पर छोड़ो !
दौड़ो, घोड़ों, दौड़ो !

जयपुर,
अगस्त '५८

एक बेरोज़गार की प्रार्थना

हे प्रभु
शरण तुम्हारी आया हूँ मैं
मुझको कोई काम दिलादो
किसी नगर में किसी गांव में
किसी कारखाने, ऑफ़िस में
किसी जगह भी काम दिलादो
इतना लम्बा चौड़ा है साम्राज्य तुम्हारा
तीनों लोकों में फैला है
एक प्रार्थना है पर, हे प्रभु !
इसी लोक में काम दिलाना !
शपथ तुम्हारी लेकर कहता हूँ विश्वास करो, प्रभु !
सचमुच मैं कमनिस्ट नहीं हूँ
गन्दे कपड़ों, बिखरे बालों से मत चौंको
ग़लत न समझो
चाहो भले तलाशी ले लो
मेरे पास नहीं है कोई
लाल रंग की चीज़–
खून के सिवा,
और वह भी अब दिन दिन पीला ही पड़ता जाता है !
सच कहता हूं,
हंसिया और हथौड़ा मैंने
छूकर कभी नहीं देखा है
दया करो प्रभु !
मुझको कोई काम दिलादो !

जयपुर,
अगस्त '५८

साँसों की हड़ताल
(अपने 'प्रयोगवादी' बन्धुओं के नाम)

भाई मेरे !
ऊपर ऊपर से तुम मुझे कोस लो चाहे जितना
कहलो—
मैं प्रचार की घुट्टी देता हूं लोगों को
कविता की शक्कर से मढ़कर
और कि मेरी कविताओं में
उच्च कला के दर्शन कभी नहीं होते हैं
पर भीतर ही भीतर तुम भी सोच रहे हो
आखिर क्या कारण जो मेरी
कलम नहीं रुकती है थक कर
क्यों मेरा दम नहीं टूटता कदम कदम पर

और न क्यों मैं कभी तुम्हारी तरह यही कहता हूँ :
जो भीतर था सब कहा जा चुका
नहीं रहा अब कुछ भी मेरे पास किसी से कहने को
कुछ लक्ष्य नहीं है जिस पर मैं प्रत्यंचा खींचूं—
अब कोई गहरा दर्द नहीं है सहने को।

हां, मेरा भी हाल किसी दिन ऐसा ही था
जबकि ज़िन्दगी की मिल बन्द हुई थी
सांसों के मज़दूर बग़ावत पर उतरे थे
कर दी थी हड़ताल
क़लम का करघा थक निस्पन्द हुआ था
काम छोड़ बैठा था मेरे भी विवेक का धुनिया
अन्धे आवेगों की आंधी में अनधुनी रुई भावों की

उड़ने लगी अवश थी
टूट टूट कर बिखर रहे थे तार सभी शब्दों के
और रुका था

कविता के कपड़े का मेरा भी उत्पादन
क्योंकि प्यार-पूंजी पर कुण्डल मारे
अहम् का मालिक बैठा था
किसी बड़े बूढे अजगर सा
और सांस के मज़दूरों का यह नोटिस था :

> जब तक मिल का लाभ नहीं बांटा जाएगा सब में—
> जब तक हर कमकर को बोनस नहीं मिलेगा पूरा पूरा
> नहीं चलेगी तबतक यह मिल
> चक्का जाम रहेगा।

कोशिश की मैंने भी
कुछ गद्दार इंटकी सांसों को तैयार किया था

और तरक्की के लालच की रिश्वत देकर
उन्हें काम पर बुला लिया था
घेरने पर बैठी सांसों को चीर, कुचल पहुँचीं वे भीतर
लेकिन

मिल का काम नहीं चल पाया
फूट नहीं पाए ज्यादा मज़दूर
कि उनका एका बहुत कड़ा था।

हां, कुछ हरकत हुई प्राण के पहियों में
कुछ तार जुड़े : आड़े या तिरछे
कुछ में गांठें लगीं
और कुछ टूटे ही बिन गये छन्द-लय के ताने-बाने में
बना सिर्फ़ दो चार हाथ पर
कटा-फटा कविता का कपड़ा—
घटी मांग झट
जनता के बाज़ार में एकदम भाव गिर गये
और तुम्हारी तरह मेरा भी
लिखने का व्यापार ठप्प होने को आया
तब यह चिन्ता हुई कि कैसे बिक पाएगा
टूटे-बिखरे
ऊंचे नीचे
उलझे उलझे तारों वाली
विघटन वाली
पस्ती वाली
हारों वाली
तनहाई के तेज़ाबों से जली हुई
बेजान हुई कविता का कपड़ा

जो कि किसी के काम नहीं आता है
उन ठालों के सिवा
वक़्त जाया करने जो
उसे ध्यान से देख देख सोचा करते हैं :

यह जो तार गिरा है टेढ़ा, इसका क्या मतलब है ?
और यहां जो टूट गया है, इससे कैसा भाव प्रकट होता है ?
कौन गहन अनुभूति हुई अभिव्यक्त यहां पर
जहां तार मोटा आया है !

कब तक ऐसे ख़रीदार मिलने पाएंगे
कब तक चल पाएगा इसका भी उत्पादन
संघ-द्रोहिणी इनी-गिनी सांसों के बल पर
यही सोच कर मैंने, भाई मेरे !

करली है मंजूर सभी मांगें सांसों की
और अहम् को
मालिक की गद्दी से उतार कर
सांसों के प्रतिनिधियों को सत्ता सौंपी है

तभी निकल पाता है भाई
इस करघे से
ऐसा कपड़ा
घोर निराशा की जो बर्फ़ानी सर्दी में
और ज़ुल्म की तपती हुई धूप में
लोगों को राहत देता है—
उपयोगी है !

जयपुर,
नवम्बर १९५८

दुनियां : एक वेइंग मशीन

यह दुनियां
एक लम्बी चौड़ी वेइंग मशीन है
इसके प्लेटफार्म पर जब आप खड़े होते हैं
इसका लाल और सफेद चित्तियोंवाला चक्का तो घूम जाता है
पर आपका वज़न आंकने वाला टिकिट
यह तब तक इशू नहीं करती
जब तक कि आप इसके मुंह में पैसा न डालें !

जयपुर,
दिसम्बर '५८

ज़रायमपेशा

जी—?
हां, मैं ज़रायम-पेशा हूं !
चौंकिए नहीं
जैसा आपने पहले देखा था
वैसा का वैसा हूं !

सिर्फ़ यह
कि ज़रा लिखा करता हूं—
गुनाह करता हूं :
कि कभी कभी अख़बारों में दिखा करता हूं
सी. आइ. डी. वालों ने नाम नोट कर रक्खा है मेरा
ध्यान रखते हैं वे :
कि कहां रहता हूं ?
आजकल कैसा हूं ?
जी हां—
मैं लिखा करता हूं,
ज़रायम-पेशा हूं !

बीकानेर,
अगस्त '५६

एक हिन्दुस्तानी लड़की,
अपने मन से

सुन रे मेरे मन !
इतना मत तन
पहले इधर देख
फिर करना मीन-मेख

सुन, यह है तेरा पति
इसके सिवा नहीं तेरी गति
इसको कर प्यार
अपने को मार
हिम्मत न हार
फिर कोशिश कर एक बार
आखिर इसी से काम
या करेगी अपने पुरखों का नाम ?

देख, अपने देश का तो ढंग ही यही है
सदा से यही रीति चलती रही है
कि पहले किसी से भी शादी करो
फिर अपने जो हिस्से आये, उसी पर मरो
तू भी मरना सीख
तुझसे मैं मांगती हूँ भीख
आखिर इस बिचारे में कौनसी बुराई है
मां-बाप ने देख सुनकर ही आखिर तुझे ब्याही है
फिर औरत को किसी न किसी मर्द से तो झुकना ही पड़ता है
तब इसी से झुकने में क्या फ़र्क पड़ता है
सोचले अब तू बस इसकी परिणीता है
यह राम है तेरा, तो तू इसकी सीता है
पर यह राम हो या न हो, तुझे सीता रहना है
इसका ही होकर रहना है, अगर जीता रहना है
भले घर की लड़कियों का यही है ढंग
जैसे काली कामरी चढ़े न दूजो रंग !

बीकानेर,
अक्तूबर, '५६

हिम्मतवाले का काम

सच को पचा जाना
बड़ा मुश्किल काम है, जनाब !
गज़ब का होता होगा उनका हाज़मा
जो इसे कच्चा ही निगल जाते हैं
और डकार तक नही लेते ।
लेकिन मैं तो बाज़ आया, साहब !
हर तरह से खा कर देख लिया इसे
उबाल कर भी, और सेक कर भी
भिगो कर भी, और तल कर भी
यहां तक कि इसका कीमा भी किया
स्वास्थ्य के नियमों के अनुसार
एक एक ग्रास को बत्तीस बत्तीस बार चबाया भी
खा कर दण्ड भी पेले
हाज़मे के चूर्ण भी फांके
पर सच !
अजीब चीज़ है साहब, यह !
पचना तो दूर
पेट में ठहरने तक का नाम नही लेता
बाहर निकल निकल आने को करता है
जैसे किसी ने जलता हुआ अंगारा खा लिया हो—
सच को पचा जाना
किसी हिम्मत वाले का ही काम है, जनाब !

बीकानेर,
दिसम्बर '५१

यह बस्ती बटमारों की !

सोच समझ कर चलना भैया, देख संभल कर चलना भैया,
यह बस्ती बटमारों की ! तम के पहरेदारों की !

यहां पसीने के पैरों में चादी की जंजीरें हैं
बिकी हुई रस्मों के हाथों लोगों की तकदीरें हैं
यहां पुरानी परम्परा के पंजों में घुटते हैं सपने
अरमानों पर पहरा देतीं जंग लगी शमशीरें है
यहां दिलो के बीच खड़ी हैं दीवारें दीनारों की !

मेहनतकश भूखों मरते है, मौज लुटेरे करते हैं
लक्ष्मी-वाहन नयी सुबह के उजियाले से डरते है
खून चूसने की सबको पूरी पूरी आजादी है
अवसर की समानता का अधिकार यही बुनियादी है
राजनीति भी है गुलाम इन आदमखोर सियारों की !

हर पत्थर भगवान यहां का, हर पंडा पैगम्बर है
गाय यहां माता बन पुजती अब बकरी का नम्बर है
यह ऋषियों का देश घुली है भंग यहां के पानी में
भरमों का मनहूस बुढ़ापा मिलता भरी जवानी में
ये सब काली करतूतें हैं धरम के ठेकेदारों की !

बीकानेर,
जनवरी '६०

मेरे आसपास के लोग

मेरे आसपास बड़े सभ्य लोग रहते हैं !
ये, जो पानी को तो कई कई बार छानते हैं,
पर ज़हरीली परम्पराओं को आंखें मीच कर पी जाते हैं !
रोटी की पवित्रता का तो पूरा पूरा ध्यान रखते हैं,
पर सिद्धांत जूठे ही खा लेते हैं !
सब्ज़ी तो हमेशा ताज़ी ही काम में लाते हैं,
पर आदर्श बासी ही अपना लेते हैं !
कपड़े तो खुद सिलवा कर ही पहनते हैं,
पर विचार रेडीमेड ही खरीद लेते हैं !
मकान तो अपना बनवाया हुआ ही पसन्द करते हैं,
पर विश्वास किराये पर लेकर ही काम चला लेते हैं !
फ़िल्में तो अपनी पसन्द की ही देखते हैं,
पर शादी अपने मां-बाप की पसन्द की हुई लड़कियों से ही कर लेते हैं !
कितने सभ्य हैं मेरे आसपास के लोग !!

बीकानेर,
मार्च '६०

अवकाश कहां दुनियां भर की पंचायत में बेकार पड़ूं !
मेरी तो अपनी बीवी है, मेरे तो अपने बच्चे है !!

मुझको किससे क्या लेना है
मुझको किसका क्या देना है
दुनियां जो चाहे किया करे
कुछ फाड़े या कुछ सिया करे
यह क्लर्की रहे सलामत बस हम तो जैसे हैं अच्छे है !
मेरी तो अपनी बीवी है, मेरे तो अपने बच्चे हैं !!

कुछ लोग यूं ही चिल्लाते हैं
बस लोगों को बहकाते है
कहते है दुनियां बदलेगी
सबकी ही किस्मत चमकेगी
भई, हमको तो विश्वास नहीं, कई झूठे हैं, कई सच्चे है !
मेरी तो अपनी बीवी है, मेरे तो अपने बच्चे है !!

यह तो ऐसे ही चलता है
विधि-लिखा लेख कब टलता है
यह दुनियां तो भव-सागर है
लीला करता नट-नागर है
कुछ छोटी यहां मछलियां है, कुछ बड़े बड़े यहां मच्छे हैं !
मेरी तो अपनी बीवी है, मेरे तो अपने बच्चे है !!

भीलवाड़ा,
जून '६०

एक गधे को सीख

देख, बेटा, देख !
ज़रा जमीन पर पांव टेक
इतना मत उछल, छलांगें मत लगा
अपनी औकात तो देख, जरा होश में तो आ
देख, दुनिया में दो तरह के लोग होते हैं
कुछ का बोझ होता है, कुछ ढोते है
ढोने वाले कुल मे तूने जन्म लिया है
ढोने वाली अम्मा का दूध पिया है
दूध की इस शान को लजाना न सीख
गरदन को ऊंची उठाना न सीख
सुन, मेरी बात ज़रा ध्यान से तू सुन
सहनशीलता गधों का सबसे बड़ा गुन
अपने पुरखे हमेशा से वफ़ादार रहे हैं
त्याग और तपस्या के भंडार रहे हैं
पुरखों की परम्परा को तोड़ मत बेटा
अपने फ़र्ज़ों से मुख मोड़ मत बेटा
मत देख पराई हलुवा-पूड़ी मत ललचा तू जो
रूखी सूखी खाय के ठण्डा पानी पी !

पाली,
अगस्त '६१

हालत हिन्दुस्तान की !

(नज़्म प्रदीप)

आओ लोगों तुम्हें दिखाएं हालत हिन्दुस्तान की
उतर रही है कलई देखो इसकी झूठी शान की।
इसको बदलें हम, इसको बदलें हम।

यह है अपना राजपुताना नाज़ इसे रजवाड़ों पर
इसने ज़िन्दा झोंकी लाखों अबलाएं अंगारों पर
जो जो ज़ुल्म किये हैं इसने मज़लूमों-लाचारों पर
लिखी हुई है उनकी गाथा रेतीले विस्तारों पर
याद दिलाते अभी मिनिस्टर उस सामन्ती शान की !

यह देखो बम्बई खेलती मनुज-रक्त की होलियां
इधर बिल्डिंगे जगमग करती, इधर अंधेरी खोलियां
बिकने को मजबूर घूमती मज़लूमों की टोलियां
ख़ून से लेकर अस्मत तक की यहां पे लगती बोलियां
मनुज-मांस की मंडी है यह नगरी फिल्मिस्तान की !

यह है तेलंगाना धधकी आग जहां आज़ादी की
धरती के बेटों ने सत्ता तोड़ फेंक दी चांदी की
लेकिन पहुंच गयी सेनाएं तब तक नेहरू-गांधी की
गांव के गांव भून डाले, ऐसी निर्मम बरबादी की
तब फिर गया विनोबा लेकर ध्वजा वहां भूदान की !

यह संपन्न धरा केरल की नदियों ताल-तड़ागों से
काजू-केलों के कुंजों से, नारिकेल के बागों से
लेकिन है भयभीत अभी ज़र के ज़हरीले नागों से
छलनी है इसका सीना-पिछले दंशों के दागों से
एक आग दाबे है दिल में हर वाली खलिहान की !

आभार-स्वीकृति

बहुत शुक्रगुजार हूँ तेरा ऐ मेरे वतन कि अभी तक मैं
भूखा न मरा, पागल न हुआ, जकड़ा न गया हथकड़ियों में !

संकेतों के सन्दर्भ

जूझती प्रतिमा : यह कविता मैंने किसी को कार्ल मार्क्स की संसार प्रसिद्ध पुस्तक 'कॅपिटल' पढ़ते हुए देख कर लिखी थी। स्मृतियां—यादें, वेद-पुराणादि प्राचीन पुस्तकें; दोनों अर्थों में अतीतोन्मुखता का भाव है। मूर्तिमान होने को जूझ रही जो प्रतिमा—एक फ्रेंच कलाकार रोदें कहा करता था : हर पत्थर किसी विशेष मूर्ति में ढलने के लिए बेताब होता है, उसके भीतर की वह विशेष प्रतिमा मुक्त होना चाहती है और सच्चा कलाकार वही है जो उस पत्थर को छेनी से तराश कर उसके भीतर की प्रतिमा को अभिव्यक्ति देता है। मैंने इस विचार को समाज के क्षेत्र में लागू किया है। हमारे समाज रूपी अनगढ़ शिलाखंड के भीतर एक प्रतिमा—एक नई सामाजिक व्यवस्था—बाहर आने के लिए, साकार बनने के लिए जूझ रही है और हमारा फ़र्ज़ है कि हम इस अनगढ़ पत्थर को तराश कर उसे अभिव्यक्ति दें।

नयी मंज़िल : नयी राहें : सुगतिमार्ग—सही रास्ता। संघ—बुद्ध के संदर्भ में भिक्षु-संघ और आज के साधकों के संदर्भ में मजदूरों, किसानों आदि की यूनियनें। पशुबलि—पशुओं की बलि, पाशविक अत्याचार। कुंडलिनी—जीवन-शक्ति। कंस-ध्वंस—अन्याय का अन्त। कान्ह-जीत—न्याय की विजय। सखाभाव की भक्ति—साथीपन के संबंध। लाख करोड़ों श्याम—जनता।

मर गया ईश्वर : इस कविता के शिल्प की प्रेरणा लेखक को धर्मवीर भारती की एक कविता 'कविता की मौत' से मिली थी।

बिकते आदम, बनती छायाएं और मेरे गीत : पीलेप्रेत—मॅक्सिम गोर्की के एक शब्द 'यलोडेविल' का हिंदी रूपान्तर, जिसे उसने अपनी अमेरिका-यात्रा संबंधी संस्मरणों में प्रयुक्त किया था; सोने के, पूंजी के मालिक। नोटों के कागज़—इतनी हल्की चीज़ भी धन का प्रतीक होने के कारण कितनी भारी हो जाती है इस भाव को व्यक्त करने के लिए ही इन शब्दों का प्रयोग किया गया है।

जीत अधूरी: है यह कविता केरल में कम्युनिस्ट पार्टी की सरकार बनने के बाद लिखी थी। आदिम अभिशाप—बाइबल के अनुसार आदम (आदि पुरुष) और हव्वा (आदि नारी) को उनके पहले अपराध—ज्ञान का वर्जित फल खाने के कारण ईश्वर ने यह अभिशाप

दिया था कि आदम हमेशा अपनी भौंहों के पसीने से ही अपनी रोटी कमा सकेगा, अर्थात बिना कड़ी मशक्कत के वह जीविका नहीं चला सकेगा और हव्वा अपने बच्चों को बहुत कष्ट के साथ जनेगी।

अपने अन्तर्वासी विश्वामित्र से : त्रिशंकु किसी भी मध्यमवर्गीय व्यक्ति और विश्वामित्र उसके अंदर की उस 'महत्वाकांक्षा' का प्रतीक है, जो उसे उच्चवर्ग का सदस्य बनाना चाहती है। धरती सर्वहारावर्ग और स्वर्ग पूंजीपति वर्ग का, उच्चवर्ग का प्रतीक है।

साँसें और सपने : देवदत्त—गौतम का एक चचेरा भाई जिसने एक उड़ते हुए हंस को बाण से मार कर गिरा दिया था, बाद में जिसकी शुश्रूषा गौतम ने की थी। साँसें और सपने—क्रमशः यथार्थ और आदर्श के प्रतीक।

एक लोरी : आत्मा का भूखा व्याकुल बच्चा—कचोटती हुई विद्रोह चेतना। अफ़ीम की गोली—अस्थायी समझौता। खाई—निम्न सामाजिक स्थिति। मीनार—उच्च सामाजिक स्थिति।

पृष्ठभूमि : प्रकृति के विभिन्न अंगों पर मानवीय भावनाओं का आरोपण कविता में मानवीकरण कहलाता है। हिंदी कविता में अब तक अधिकतर रुमानी मानवीकरण ही किया गया है। जैसे बच्चन की यह पंक्ति—'प्राण रजनी भिंच गई नभ के भुजों में'। इस कविता में यथार्थवादी मानवीकरण के कुछ प्रयोग हैं; सामाजिक यथार्थ के कुछ दृश्यों को प्रकृति पर आरोपित किया गया है। चांद—सौंदर्य का प्रतीक है। ओस की दुधमुंही बूंदें—नन्हे नन्हे बच्चे। घाटियां और झीलें—स्त्रियां। पहाड़ और रेगिस्तान—पुरुष। कुंआरी रात का अवैध बच्चा—सुबह का तारा।

फ़ाउस्ट के कन्फ़ैशन : फ़ाउस्ट जर्मनी का एक रासायनज्ञ था जिसके बारे में यह माना जाता था कि वह शैतान की जादुई शक्तियों से सम्पन्न है। प्रसिद्ध जर्मन कवि गेटे ने अपना नाटकीय महाकाव्य 'फ़ाउस्ट' और अंग्रेज नाटककार मार्लो ने अपना नाटक 'डॉक्टर फ़ास्टस' उसी के चरित्र को आधार बनाकर लिखा था। इन कृतियों में फ़ाउस्ट एक ऐसे व्यक्ति के रूप में चित्रित किया गया है जिसने भौतिक ऋद्धियों-सिद्धियों के लिए अपनी आत्मा शैतान के हाथ बेच दी थी। इस कविता में फ़ाउस्ट ऐसे विद्रोहियों का प्रतीक माना गया है, जो अपनी थोड़ी सी सुख-सुविधा के लिए एक सामयिक समझौता कर लेते हैं, पर वह समझौता उनके विद्रोह को हमेशा हमेशा के लिए लील

लेता है।

माध्यम : कॉडवेल—अंग्रेजी के प्रसिद्ध प्रगतिशील आलोचक क्रिस्टोफर कॉडवेल, जिनकी पुस्तकें : 'इल्यूज़न अॅण्ड रीयलिटी', 'स्टडीज़ इन ए डाइंग कल्चर', 'फ़रदर स्टडीज़ इन ए डाइंग कल्चर' तथा 'द क्राइसिस इन फ़िज़िक्स' मौलिक चिंतन और गहन विश्लेषण के लिए हमेशा याद की जाएंगी। स्पेन के तानाशाह फ्रेंको के खिलाफ़ वहांकी जनता के गृह-युद्ध में भाग लेने वाले इन्टरनेशनल ब्रिगेड के सदस्य बन कर वे सिर्फ़ २९ वर्ष की उम्र में स्पेनी जनता की ओर से लड़ते हुए मारे गये। गेस्टापो—Geheime Staatspolizei जर्मन शब्द जिसका अर्थ है गुप्त राज्य-पुलिस; हिटलर का जासूस-विभाग, नाज़ी दमनयंत्र। सीक्रेट आर्मी ऑरगेनाइजेशन—उग्र फ्रांसीसी साम्राज्यवादियों का वह गुप्त सैनिक संगठन जो फ्रांसीसी राष्ट्रपति द गाल की अपेक्षाकृत उदार अल्जीरिया-नीति विरुद्ध सैनिक शक्ति के बल पर अल्जीरियाई स्वतंत्रता-आन्दोलन को कुचलना चाहता था; साम्राज्यवादी हत्यारों का वह गिरोह जिसने कुछ ही दिन में हजारों अल्जीरियाइयों को मौत के घाट उतारा।

एक गद्दार की स्वीकारोक्तियां : और जवानी गुलामी करते·········मिलाइये कीट्स की कविता 'ओड टु ए नाइटेंगेल' की इस पंक्ति से : वेयर यूथ ग्रोज़ पेल, अॅण्ड स्पेक्टर थिन, अॅण्ड डाइज़। कसाई के बकरों की तरह—मिलाइये उसी कविता की इस पंक्ति से : हीयर, वेयर मॅन सिट अॅण्ड हीयर ईच अदर ग्रोन। पुस्तक-गर्भी अंगुलियां—अंगुलियां, जिनके गर्भ में पुस्तकें हैं, अंगुलियां जो यदि अवसर मिलता तो महान् पुस्तकों की रचना करतीं। वेलन्तिना—संसार की पहली महिला अन्तरिक्ष यात्री, सोवियतसंघ की नागरिक वेलन्तिना तेरेश्कोवा, जिसने १६ जून १९६३ को वोस्तोक-६ नामक अन्तरिक्ष-यान में पृथ्वी की ४८ परिक्रमाएं की और इस प्रकार ७१ घंटे तक अन्तरिक्ष में रही। कीलर—इंग्लैण्ड की वह प्रसिद्ध वेश्या, जिसके महत्वपूर्ण राजनीतिज्ञों के साथ गहरे सम्पर्क थे, और जिसके साथ सम्पर्क प्रमाणित हो जाने के कारण इंगलैण्ड के रक्षा-मंत्री प्रोफ्यूमा का पतन हुआ।

सिर्फ एक शब्द नहीं : रंगबिरंगी रोशनियां—अलग अलग रंगों-नस्लों के लोग। वाल्ट व्हिटमॅन—एक मानववादी अमरीकी कवि जिसका संकलन 'लीव्ज़ ऑफ़ ग्रास' अंग्रेजी साहित्य में बहुत महत्वपूर्ण स्थान रखता है। मायकोवस्की—सोवियत रूस का एक जनवादी कवि जिसने अपनी कला को पूरी तरह से साम्यवादी आदर्शों की सेवा

में लगा दिया था। पाब्लो नेरुदा—चिली का प्रसिद्ध प्रगतिशील कवि। नाज़िम हिक़मत—तुर्की का महान क्रान्तिकारी कवि जिसने जेलों में ही अपनी अधिकांश जिंदगी काटी। मॅक्सिम गोर्की और हावर्ड फ़ास्ट—रूस और अमेरिका के प्रसिद्ध जनवादी कथाकार।

मॅरेलिन मनरो का अन्तिम पत्र : मनरो अमेरिका की प्रसिद्धतम फ़िल्म-अभिनेत्री थी, जिसने नींद की गोलियां खा-खा कर आत्महत्या कर ली थी। इस कविता की प्रेरणा लेखक को ख्वाजा अहमद अब्बास के 'ब्लिट्ज़' में छपे एक 'लास्ट पेज' से मिली थी, कविता की अधिकांश सामग्री के लिए भी लेखक अब्बास साहब का आभारी है। सैंतीस-तेईस-सैंतीस—मनरो के वक्ष, कमर और नितम्बों का नाप; इंचों में। एक बाघ है और एक मेमना—अंग्रेजी के प्रसिद्ध साप्ताहिक समाचार-पत्र 'टाइम' के अनुसार उसने मरने से पहले का समय इन्हीं खिलौनों से खेलते हुए गुज़ारा था।

संवेदनाओं के क्षितिज : जब मेरे दिल का एक हिस्सा·········मिलाइये : नाज़िम हिक़मत की कविता 'एंजाइना पिक्टरिस' की इन पंक्तियों से : यदि मेरा आधा दिल यहां है डॉक्टर; तो आधा चीन में है, पीली नदी की ओर बढ़ती हुई सेना के साथ। मेरे विचार—दक्षिणी वियतनाम की स्वतंत्रता के लिए लड़ रहे राष्ट्रीय मुक्तिमोर्चे के बहादुर गुरिल्ला सैनिकों की ओर संकेत हैं जिन्हें वीतकांग कहा जाता है। ज़हरीले रासायनिकों की गंध—इंग्लैण्ड के प्रसिद्ध अख़बार 'ऑब्ज़र्वर' के ९ फरवरी '६४ के अंक में प्रकाशित अपने एक वक्तव्य में ९१ वर्षीय विश्व-प्रसिद्ध अंग्रेज दार्शनिक और साहित्य में नोबल पुरस्कार विजेता बर्टेण्ड रसल ने भी कहा है कि इस बात के उनके पास पर्याप्त प्रमाण है कि दक्षिणी वियतनाम में अमेरिका और दक्षिण वियतनामी सरकारों द्वारा बड़े पैमाने पर टॉक्सिक गैस और आरसेनिक का प्रयोग किया जा रहा है। हावर्ड फ़ास्ट—अमेरिका के जनवादी कथाकार। स्पार्टकस : हावर्ड फास्ट के इसी नाम के प्रसिद्ध उपन्यास का नायक, एक गुलाम विद्रोही। इस उपन्यास का हिन्दी अनुवाद अमृतराय ने 'आदि विद्रोही' नाम से किया है। ऍच. जी. वेल्स ने अपनी 'ए शार्ट हिस्ट्री ऑफ़ द वर्ल्ड' में स्पार्टकस के बारे में इस तरह लिखा है: "ईसा के जन्म के ७३ वर्ष पहले इटली के कष्ट, स्पार्टकस के नेतृत्व में हुए दास-विद्रोह से बढ़ गये थे। इटली के दासों ने एक प्रभावशाली ढंग से विद्रोह किया, क्योंकि उनके बीच ग्लेडिएटर—प्रदर्शनों के लिए प्रशिक्षित दास-योद्धा भी थे। दो वर्ष तक स्पार्टकस ने विसूवियस क्षेत्र पर अधिकार जमाए रक्खा। यह विद्रोह अन्त में अत्यधिक क्रूरता के साथ कुचल दिया

गया। छः हज़ार दासों को स्पीयन राजमार्ग के—जो कि रोम से दक्षिण की ओर जाता है—दोनों ओर क्रूस पर चढ़ा दिया गया।" ग्लेडिएटर—गुलाम पहलवान जिन्हें रोमन लोगों के मनोरंजन के लिए तब तक लड़ते रहना पड़ता था, जब तक कि दोनों में से एक मर न जाय। 'राहुल' : एक प्रगतिशील साप्ताहिक पत्र जिसे लेखक ने अपने साथियों के साथ झुंझुनू से निकाला था। बगदाद की सड़कों पर—ईराक में कासिम-विरोधी बाथिस्टों की फौजी क्रान्ति के समय किये गये वहां के कम्युनिस्टों के कत्ले आम की ओर संकेत है, जो वर्तमान राष्ट्रपति आरिफ़ के नेतृत्व में किया गया था। दुनियां के कोने कोने में ...मिलाइये : नाज़िम हिकमत की कविता 'यह दुनियां : हमारे दोस्त और दुश्मन' की इन पंक्तियों से : स्पेन से चीन तक, उत्तमाशा अन्तरीप से अलास्का तक, ज़मीन के चप्पे चप्पे और समुद्र की लहर लहर में, हमारे दोस्त हैं, हमारे दुश्मन हैं। मज़लूमों का एक बुलन्द इरादा—मजदूरों का एक लाल झण्डा।

प्यार अभी मजबूर है : फरहाद—लोक-कथाओं का प्रेमी नायक जिसने अपनी प्रिया शीरीं को पाने के लिए पहाड़ खोद डाला था, और जिसके लिए शीरीं अपने पिता की हवेली की दीवार से कूदकर मर गई थी। कैदो—हीर-रांझे की प्रेम कहानी का खलनायक, जिसके साथ हीर की शादी हुई थी। चांदी की रेतें – पूंजीवादी व्यवस्था रूपी रेगिस्तान। मिर्ज़े का तरकस – मिर्ज़ा साहिबां का प्रेमी था और बहुत अच्छा तीरन्दाज माना जाता था। एक बार जब वह साहिबां को अपने घोड़े पर बिठाकर भगा लाया था, और वे लोग एक पेड़ के नीचे विश्राम कर रहे थे, साहिबां के भाइयों ने उन्हें घेर लिया। साहिबां जानती थी कि मिर्ज़ा उसके भाइयों को वहीं मार गिरा सकता है, इसलिए उसने अपने भाइयों की जान बचाने के लिए उसका तरकस पेड़ पर टांग दिया। उसने सोचा था कि भाइयों के नज़दीक आने पर वह उनसे प्रार्थना करके अपने प्रेमी की जान भी बचा लेगी, पर ऐसा नहीं हो सका। निहत्थे मिर्ज़ा पर उसके भाई टूट पड़े और वह मारा गया। सोहिनी की डूबती पुकार—सोहिनी अपने प्रियतम महीवाल से मिलने के लिए रातों के अंधेरे में एक घड़े पर चिनाब नदी पार किया करती थी। एक रात उसकी ननद ने उसके घड़े को एक कच्चे घडे में बदल दिया। सोहिनी जब हमेशा की तरह उसके साथ नदी में उतरी तब घडा गल गया और वह डूबने लगी। उसकी पुकार सुनकर दूसरे किनारे से महीवाल लहरों को चीरता हुआ तैर आया लेकिन वह उसे बचा नहीं सका और दोनों साथ ही नदी की मंझधार मे डूब गये।

मैं प्यार बेचती हूँ ! : भवानीप्रसाद मिश्र की 'कविता गीत फ़रोश' के ढंग पर। स्वकीया, परकीया, विमुक्ता—संस्कृत रीतिशास्त्र के नायिका भेदों में से तीन; क्रमशः अपनी पत्नी, दूसरे की पत्नी और सामान्य स्त्री (वेश्या)। हक़ीक़ी, मजाज़ी—सूफ़ियों के अनुसार प्यार के दो प्रकार; दैवी प्रेम और सांसारिक प्रेम। रिन्द—शराब पीने वाला, इस्लाम की दृष्टि से अधर्मी। बोर्जुआ—मध्यमवर्गीय, टटपूंजिया। माद्दी—शारीरिक। प्लेटोनिक—आदर्शवादी, आध्यात्मवादी। साड़कीय—सड़क का। प्रेस्काइब्ड कोर्स—निर्धारित पाठ्यक्रम, निश्चित रास्ता।

कुत्तों की आज़ादी : पूंजीवादी समाज में दी जाने वाली भाषण की स्वतंत्रता।

घोड़ों का अर्थशास्त्र : प्रतियोगिता का अर्थशास्त्र, पूंजीवादी अर्थशास्त्र। रेफ़्री—पूंजीवादी सरकारें, पूंजीवादी न्याय-व्यवस्था।

सांसों की हड़ताल : जो भीतर था सब कहा जा चुका'''दर्द नहीं है सहने को—संदर्भ : 'ठंडा लोहा' में संकलित धर्मवीर भारती की एक कविता। कुछ तार जुड़े आड़े या तिरछे—प्रयोगवादी कविता की ओर संकेत है। उन ढालों के सिवा—प्रयोगवादी आलोचकों से मतलब है।

यह बस्ती बटमारों की : यह कविता मैंने 'पथिक' के साथ संयुक्त रूप से लिखी थी।

हालत हिन्दुस्तान की : यह कविता प्रदीप की प्रसिद्ध राष्ट्रीय कविता 'आओ बच्चों तुम्हें दिखाएं झांकी हिन्दुस्तान की' की पैरोडी-सी है, उसके उत्तर में लिखी गयी है। नज़रुल-इस्लाम—बंगला के प्रसिद्ध क्रांतिकारी कवि।

